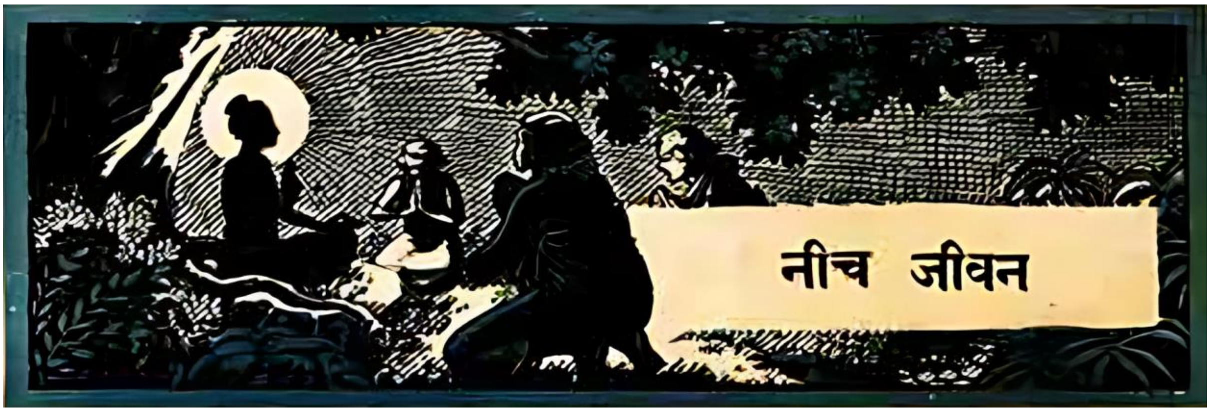
चन्दामामा

बच्चों का मासिक पत्र



8



ब्रह्मदत्त उन दिनों काशी का राजा था। बोधिसत्व सुतन नामक गरीब आदमी के रूप में पैदा हुए। वे बड़े हुए। और अपनी कमाई से माँ-बाप का पालन-पोषण करने लगे थे। कुछ समय बाद सुतन के पिता का देहान्त हो गया। सिर्फ माँ ही रह गई। सुतन दिन भर मेहनत करता; पर जो कमाता न उससे उसका गुज़ारा होता, न उसकी माँ का ही। दोनों को बड़ा कष्ट होता।

उस देश के राजा को शिकार का बड़ा शौक था। वह प्रायः जङ्गल जाकर, जङ्गली जानवरों का शिकार किया करता। एक बार एक हरिण का पीछा करता राजा बहुत दूर जङ्गल में चला गया। आख़िर उसे जैसे तैसे बाण से मार दिया। आसपास राजा का कोई सैनिक न था। इसलिये राजा को ही उस हरिण को कन्धे पर डालकर चलना पड़ा।

ठीक दुपहर थी। कड़ी धूप पड़ रही थी। शिकार की थकान तो थी ही, फिर हरिण को कन्धे पर ढ़ोने से राजा और भी थक गया। तब वह एक विशाल बढ़ के पेड़ की छाया में हरिण को पटककर स्वयं सुस्ताने लगा।

दूसरे क्षण राजा के सामने एक राक्षस ने प्रत्यक्ष होकर कहा-"मैं तुझे खा जाऊँगा।" कहता हुआ वह उस पर लपका।

"तुम कौन हो? मुझे खाने का तुम्हें क्या अधिकार है?" राजा ने राक्षस से पूछा।

"यह पेड़ मेरा है। इस पेड़ के नीचे जो कोई आता है, उन्हें मुझे खाने



का अधिकार है। मैं ब्रह्मराक्षस हूँ।" भूत ने कहा।

राजा सोचने लगा। थोड़ी देर बाद उसने राक्षस से पूछा-"क्या तुम आज ही खाना खाओगे ! या रोज़ तुम्हें भोजन चाहिये ?"

"मुझे रोज़ खाना चाहिए।" ब्रह्म राक्षस ने कहा।

"तो आज मुझे खा जाने से तुम्हारी भोजन की समस्या हल नहीं हो जायेगी। और आज अगर तुमने इस हरिण को खाकर मुझे छोड़ दिया तो मैं तुम्हारी भोजन की समस्या रोज हल कर दूँगा। मैं इस देश का राजा हूँ। इसलिये मैं भोजन के अलावा, एक आदमी भेज सकता हूँ।" राजा ने कहा।

राक्षस यह सुनकर बड़ा खुश हुआ। "अच्छा तो मैं तुझे छोड़े देता हूँ। पर जिस दिन आहार नहीं पहुँचेगा में उस दिन तुझे ही हजम कर लूँगा।"

राजा ने हरिण राक्षस को दे दिया। राजधानी पहुँचकर उसने सारी बात मन्त्री से कही।

"महराज! आप फिक्क न कीजिये। हमारे जेलों में बहुत से अपराधी हैं। उनमें से रोज एक एक को राक्षस के पास उसके भोजन के लिए भेज देंगे।" मन्त्री ने कहा।

तब से मन्त्री, रोज़ एक कैदी को जङ्गल में बढ़ के पेड़ के पास भोजन के साथ भेजता और राक्षस भोजन के साथ कैदी को भी खा जाता।

कुछ समय बाद सब कैदी ख़तम हो गये। मन्त्री सोच न पाया कि क्या किया जाये। आख़िर उसने राज्य भर में यह घोषणा करवा दी-

"जङ्गल में रहने वाले भूत के लिए जो कोई भोजन लेकर बढ़ के पेड़ के पास जायेगा, उसे राजा हज़ार रुपया इनाम देगा।"

यह घोषणा सुन सुतन ने सोचा-"क्या आश्चर्य है! मैं खून पसीना एक करता हूँ और मुझे दो-चार पैसे से अधिक नहीं मिलता। ब्रह्म राक्षस को भोजन ले जाने से इतने रुपये देंगे!" उसने माँ से कहा-"माँ! मैं भोजन लेकर भूतों वाले बढ़ के पेड़ तक ले जाऊँगा.... उस रुपये से तेरा अच्छी तरह गुज़ारा हो जायेगा!"

"अब भी मुझे क्या कमी है? मैं आराम से हूँ। तुझे कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है।" सुतन की माँ ने कहा।

"कोई ख़तरा नहीं है। में सुरक्षित वापिस आ जाऊँगा।" सुतन माँ को समझा-बुझाकर राजा के पास गया।

"महाराज! यदि आपने चप्पल, छाता, तलवार, एक सोने का बर्तन दिलवाये तो मैं जङ्गल में भूतोंवाले बढ़ के पेड़ तक भोजन ले जाऊँगा।" सुतन ने बड़े विनीत भाव से राजा से कहा।



"भोजन ले जाने के लिये इन सब की क्या जरूरत है?" राजा ने पूछा।

"ब्रह्म राक्षस को हराने के लिये।" सुतन ने उत्तर दिया।

फिर तलवार कमर में बाँधकर, चप्पल पहन, छाता निकाल, सोने के बर्तन में भोजन लेकर, दुपहर को भूतोंवाले बढ़ के पेड़ के पास गया। वह पेड़ की साया में नहीं गया, बाहर छाते के नीचे खड़ा रहा।

उसको देखकर ब्रह्म राक्षस ने कहा-"धूप में बड़ी दूर से आये हो। इधर छाया में आकर आराम करो।"

"नहीं, मुझे तुरन्त वापस चले जाना है। यह लो तुम्हारे लिये भोजन लाया हूँ।" कहते हुए उसने सोने के बर्तन को धूप में रख दिया; फिर तलवार से उसको छाया में सरका दिया।

सुतन की समझ देखकर ब्रह्म राक्षस खौल उठा। "मैं आहार और आहार लानेवाले को भी खाता हूँ।" वह गरजा।

"तू मुझे नहीं खा सकता। मैं तेरी पेड़ की साया में नहीं आया हूँ। मुझे खाने का तुझे क्या अधिकार है?" सुतन ने पूछा।

"सरासर धोखा हैं। मुझे तुझसे क्या वास्ता? मैं जाकर उस राजा को ही खा लूँगा।" ब्रह्म राक्षस इधर उधर चहल-कदमी करने लगा।

"तूने किसी जन्म में महापाप किया है। मृत होकर इस पेड़ पर आश्रय लिया है। इतना नीच जीवन बसर करते हुए भी तुझे अभी तक शर्म नहीं आई? अब से तुम भलमनसाहत से जिओ।" सुतन ने ब्रह्म राक्षस को समझाया।

ब्रह्म राक्षस ने खिन्न होकर पूछा-"तो मुझे क्या करने के लिये कहते हो?"

"मेरे साथ आ और हमारे नगर के द्वार पर रह। वहाँ रोज़ में तेरे लिए अच्छा भोजन भेज दूँगा। मनुष्य को मारकर खाने की बुरी आदत छोड़ दे।" सुतन ने कहा।

ब्रह्म राक्षस ने वही किया।

सुतन को जीता जी वापिस आया देख, राजा को आश्चर्य हुआ। सुतन ने सारा वृत्तान्त राजा को सुनाया। राजा ने सन्तुष्ट होकर सुतन को अपना सेनापति नियुक्त किया। उसके बाद, सुतन की सलाह पर, वह सुख से राज्य करने लगा।





अरण्य में एक दिन, खरगोश हरिण के पास गया। हरिण, हरिण की पत्नी ने खरगोश का कुशल-क्षेम पूछकर कहा-"सुना है तुने लोमड़ी को खूब सताया है। लोमड़ी कह रही है कि वह तेरी ख़बर लेगी। जरा सम्भल कर रहना अच्छा है।"

स्वरगोश ने हँसकर कहा-"मैं इस लोमड़ी को और सताउँगा। यह मेरे पिताजी की ३० साल तक वाहन रही थी।"

जब अगले दिन लोमड़ी हरिण के घर गई तो उसे खरगोश की कही हुई बातें मालूम हुई। लोमड़ी ने दाँत पीसकर कहा-"इस खरगोश के बाप का कब वाहन था? मैं उसके मुँह ही, तुम्हारे सामने कहलाऊँगा।" कहते हुए, सीधे खरगोश के घर गई।

खरगोश सोच ही रहा था कि लोमड़ी ज़रूर आयेगी। इसलिये दरवाजा बन्द करके वह अन्दर बैठा हुआ था। लोमड़ी ने आकर दो तीन बार दरवाज़ा खटखटाया। खरगोश ने धीमी आवाज़ में पूछा-"कौन है वहाँ? क्या लोमड़ी भैय्या हैं?"

"मैं तेरे लिये आई हूँ; जल्दी दरवाज़ा खोल।" लोमड़ी ने कहा।

"मैं बहुत बीमार हूँ। क्या ज़रा वैद्य को ला सकोगे?" खरगोश ने पूछा।

"नहीं, अभी नहीं; आज हरिण के घर दावत है। तुझे लिवा लाने के लिये उन्होंने भेजा है। देरी मत करो!"

"मैं एक कदम भी नहीं उठा सकती।" स्वरगोश ने कराहते हुये कहा।

"मैं पकड़कर सहारा दूँगा।" लोमड़ी ने कहा।

"इतना बुला रहे हो! अगर तुमने मुझे अपने पीठ पर चढ़ने दिया तो

आऊँगा।" खरगोश ने कहा। लोमड़ी मान गई। पर खरगोश ने कई शर्ते लगाई। जब तक लोमड़ी, अपनी पीठ पर ज़ीन रखकर, लगाम लगा कर तैयार न हो गई, खरगोश चलने को राजी न हुआ।

"तुझे हरिण के घर से कुछ दूर ही उतार दूँगा।" लोमड़ी ने कहा।

"अच्छा!" खरगोश ने कहा।

खरगोश, लोमड़ी के मन की बात ताड़ गई। उसने काँटेवाली एक हँड़ी ली। हरिण के घर से कुछ दूर लोमड़ी रुकी ही थी कि खरगोश ने उसे काँटेवाले डण्डे से चुभाया। दर्द के कारण, लोमड़ी वाण की तरह दौड़ी। हरिण के घर पर भी न रुकी। दरवाज़े पर खड़े हरिण और हरिण की पत्नी यह देख कर हैरान हो गये।

कुछ दूर जाने के बाद, खरगोश बड़ी मुश्किल से उसे रोक कर फिर उसे हरिण के घर लाया। और सब के देखते देखते, हरिण के घर के सामने वाले एक खम्भे से बाँध दिया और स्वयं अन्दर चला गया।

थोड़ी देर बाद, खरगोश बाहर आया, और लोमड़ी पर सवार होकर उसे हाँकने लगा।

"देख, मैं तेरी क्या गत बनाती हूँ।" यह कह लोमड़ी एक निर्जन प्रदेश में भाग निकली। खरगोश भी उसके पीठ से कूद कर झाड़ झखाड़ों के पीछे रफू चक्कर हो गया। लोमड़ी ने उसका पीछा किया। लोमड़ी उसे पकड़ने को ही थी कि खरगोश, एक पेड़ की खोल में घुस गया।

वह खोल बड़ा न था। पीछा करती करती लोमड़ी ने भी उसमें घुसना चाहा। क्योंकि खोल छोटा था, इसलिये उसके सिर पर चोट लगी और लोमड़ी गिर गई।





[२]

[अवन्ती नगर में तीन भाई रहा करते थे। छोटा भाई, पिङ्गल मछली पकड़ने लिए तोता झील गया। वहाँ मण्डन नाम के के व्यक्ति ने आकर उससे कहा कि वह हाथ पैर बाँधकर उसको झील में फेंक दे। पिंगल ने वह किया। नगर में, काञ्चन मिश्र के पास जाकर उसने सौ मुहरें ले लीं। बाद मे]

काञ्चन मिश्र की दी हुई सौ मुहरों को लेकर खुशी खुशी पिङ्गल दुकानदार के पास गया। पिङ्गल को देखते ही दुकानदार को यह समझने में देर न लगी कि वह खुश था! "क्यों, पिङ्गल! लगता है तुम्हारा भाग्य खिल गया है? मालूम होता है, खूब मछलियाँ पकड़ी हैं।"

पिङ्गल ने दुकानदार की बातें सुनते ही अपनी खुशी में चाहा कि वह उसे बता दें कि उसने सौ मुहरें कैसे कमाई थीं। परन्तु उसे काञ्चन मिश्र की चेतावनी तुरन्त याद आ गई। वह सम्भल गया। "दस दिन बाद आज ही जाल में मछलियों फँसी हैं। पिछले दस दिन, ऐसा लगता था, जैसे दुर्भाग्य मेरा पीछा कर रहा था।"

दुकान में जितना उधार देना था, उसका हिसाब देखकर पिङ्गल ने पूरा का पूरा दे दिया और ज़रूरी चीजें भी



खरीद लीं। वह जब घर पहुँचा तो दीवार के सहारे बैठे उसके दोनों भाई ऊँघ रहे थे। माँ दौड़कर सामने आई। पिङ्गल ने दुकान से लाई हुई चीज़ों को माँ को देकर कहा-"आज भाग्य ने साथ दिया है। जल्दी खाना बनाओ। बहुत भूख लग रही है।"

थोड़ी देर में भोजन तैयार हो गया। पिङ्गल के साथ जीवदत्त और लक्षदत्त ने भी जल्दी जल्दी भोजन किया और खुशी खुशी बाहर चले गये। भाइयों के बाहर जाते ही, जेब में से मुहरें निकालकर पिङ्गल ने माँ के सामने बिछा दीं।

मुहरें देखकर, उसकी माँ बहुत चकित हुई। "इतना रुपया कैसे कमाया है बेटा?" माँ ने पूछा।

पिङ्गल ने बिना कुछ छुपाये, सब कुछ माँ को सुना दिया। माँ ने घबराते हुए कहा-"पिङ्गल! जो तुमने किया है, अगर वह किसी को मालूम हो गया तो खतरा है। अब से तुम तोता झील की तरफ़ न जाना। कौन जाने, क्या होगा? सावधान रहना बेटा!"

माँ को डरता देख, पिङ्गल ने हँसकर कहा-"जो मैंने किया है, वह अपराध कैसे है? वह आदमी, खुद हाथ-पैर बाँधकर झील में डूबकर मर गया। परन्तु यह बात किसी को कहे बिना भी रहा जा सकता है। इस रहस्य को मैं छिपाकर रखूँगा। तुम बेफिक्र रहो।"

"तुम अपने भाइयों के बारे में तो जानते ही हो। देखो, उनके कानों में यह बात न पड़े।" माँ ने कहा।

दस दिन बाद पिङ्गल, उस दिन आराम से सोया। वह अगले दिन सवेरे, जाल लेकर तोता झील की तरफ गया। वह झील में दुपहर तक जाल फेंकता रहा



पर एक मछली भी न फँसी। वह निराश हो, वापिस घर जाने की सोच रहा था कि दूरी पर, तेज़ी से घोड़े पर आता हुआ सवार दिखाई दिया।

पिङ्गल घबरा गया। घुड़सवार ठीक मण्डन की तरह था। "कहीं झील में डूबा हुआ, आदमी भूत तो नहीं हो गया है? यह क्या बात है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।" पिङ्गल यों सोचने लगा। इस बीच, घोड़ा पास आ गया। सवार ने हँसते हुए, घोड़े पर से उतरकर कहा-"पिङ्गल! मैं तुम से एक मदद चाहता हूँ।"

पिङ्गल घबराता घबराता उसकी तरफ देखता रहा।

शक्ल-सूरत तो उसकी मण्डन जैसी ही थी; परन्तु उम्र में वह उससे छोटा लगता था। घोड़ा भी किसी और रङ्ग का था। पिङ्गल तब जान गया कि वह मण्डन का भूत न था।

"आप मेरा नाम कैसे जानते हैं? आप मुझ से क्या मदद चाहते हैं?" पिङ्गल ने पूछा।

वह प्रश्न सुनते ही घुड़ सवार ज़ोर से हँसा। उसने कहा-"मैं तुम्हारा काम कैसे जानता हूँ; मैं किस काम पर आया हूँ--यह सब बातें ऐसी नहीं हैं जो तुम न जानते हो। मेरा नाम अनुरूप है। इसके पहले तुम्हारी मदद माँगनेवाला मण्डन मेरा भाई ही था।"

"मण्डन आपका भाई था! वह कहाँ है?" पिङ्गल ने नादानी से पूछा। अनुरूप ने खिल खिलाकर हँसते हुए, झील की ओर इशारा किया। "शायद, मण्डन वहाँ है, नहीं तो इस झील के जलचरों का आहार बन गया होगा। क्यों क्या कहते हो? ठीक है मेरी बात?"



"तो जो कुछ कल यहाँ गुज़रा था; वह सब आप जानते हैं?" पिङ्गल ने कहा।

"हाँ, मैं सब जानता हूँ। मैं भी तुम से सहायता चाहता हूँ।" अनुरूप ने कहा।

"उसमें क्या है! ज़रूर करूँगा; पर इस बार आपको दो सौ मुहरें देनी होंगी।" पिङ्गल ने कहा।

अनुरूप जोर से हँसा। पिङ्गल का कन्धा थपथपाते हुए उसने कहा- "हाँ, पहले ही सन्देह कर रहा था कि तुम कहीं दो सौ मुहरें न माँग बैठो। इसलिये काञ्चन मिश्र के यहाँ इसका प्रबन्ध कर आया हूँ। पर देखो तुम यह क्यों सोचते हो कि मैं जीता जी झील में से फिर नहीं निकलूँगा?"

फिर पिङ्गल ने रस्सी लेकर उसके हाथ बाँध दिये। उसके बाद उसको कन्धे पर डालकर, झील के किनारे गया और वहाँ से उसको अन्दर धकेल दिया। अनुरूप ने झील में गिरने से पहले पिङ्गल से कहा- "पिङ्गल! झील में धकेल देने के बाद अगर मेरा सिर पहले तैर आये तो जाल फेंककर मुझे बाहर खींच लेना।"

पिङ्गल झील के किनारे ही जाल लिये तैयार खड़ा था। झील में थोड़ी देर तरङ्गें उठीं, फिर रुक गई। दो-तीन मिनट बाद, पानी में बुलबुले दिखाई दिये और अनुरूप के पैर तैर आये।

विचारा मर गया है। यह सोच पिङ्गल अनुरूप के घोड़े पर सवार होकर, बिना पीछे देखे, शहर चला गया। काञ्चन मिश्र, उसको थोड़ी दूर पर देखकर चिल्लाया-"लोभ दुःख का कारण है।" फिर उसने गिनकर दो सौ मुहरें उसे दे दी।

"लोभ किसको है? मुझे? इन दो सौ मुहरों के लिए कितनी मेहनत कर रहा

हूँ, क्या तुम जानते हो?" पिङ्गल ने काञ्चन मिश्र से पूछा।

काञ्चन मिश्र ने सिर हिलाते हुए कहा-"लोभ तुम्हें नहीं है, उनको हैं, जो मर गये हैं। जो काम तुम कर रहे हो, अगर किसी को मालूम हो गया तो अनुमान करना कठिन नहीं है कि उसका परिणाम कितना खतरनाक होगा। तुम में भी लोभ धीरे धीरे सिर ऊँचा कर रहा है। क्योंकि तुमने कल सौ मुहरें ली थीं और आज दो सौ मुहरें।"

"कल तीन सौ मुहरें। अगर किसी ने इससे कम दिया तो मैं किसी की, मरने के लिए मदद नहीं करूँगा।" पिङ्गल यह कहता चला गया।

उस दिन रात को, पिङ्गल ने अपनी माँ को दो सौ मुहरें दीं। माँ उसको देखकर डर के कारण काँप उठीं। "बेटा! कम से कम, अब तो उस तोता झील की तरफ जाना बन्द कर दो। मैं जाने क्यों डर रही हूँ।"

"कुछ डर नहीं है! पर देखना तो यह है कि यह बात किसी को न पता लगे।" पिङ्गल ने धीरे से कहा।



उस दिन रात को पिङ्गल ठीक तरह सो न सका। सवेरे सवेरे जाल कन्धे पर डालकर तोता झील गया। वह यद्यपि झील में जाल डाल रहा था तो भी उसकी नज़र मैदान की ओर थी। वह बार बार उधर देख रहा था।

ठीक दुपहरी में, मैदान में धूल उड़ाता आता, एक घुड़सवार पिङ्गल को दिखाई दिया। देखते देखते उस घुड़ सवार ने पिङ्गल के पास आकर कहा-"पिङ्गल! मेरा नाम पद्मपाद है। मेरी एक मदद करनी होगी।"

"मदद? जरूर करूँगा। इस झील में गिर कर जो कोई आत्महत्या करना चाहता है, उन सब की मदद करना ही मेरा काम है। इसके लिए मुझे तीन सौ मुहरें देनी होंगी।"

"हाँ, हाँ! अगर मैं मर गया तो काञ्चन मिश्र तीन सौ मुहरें दे देगा।" कहते हुए पद्मपाद ने, घोड़े पर से लटकती हुई रस्सी लेकर पिङ्गल को दी।

पिङ्गल ने रस्सी लेकर, पद्मपाद के हाथ बाँध दिये। उसको कन्धे पर डाल, झील के पास ले गया और उसको झील में डाल दिया। "विचारा मर गया है" कहता, कहता, घोड़े के पास गया।

पिङ्गल ने झील की तरफ भी न देखा। घोड़े पर बैठकर यह जा रहा था कि उसको पद्मपाद का चिल्लाना सुनाई दिया। "पिङ्गल! जाल फेंक कर मुझे जल्दी बाहर निकालो। तुम्हारा भला होगा।"

पिङ्गल घोड़े से उतरा और झट जाल फेंक कर, उसने पद्मपाद को बाहर निकाला। पद्मपाद हाँफता हाँफता बाहर आया। उसके हाथ में दो मगर के बचे थे। पिङ्गल, चकित हो, उनके बारे में पूछना ही चाहता



था कि इतने में पद्मपाद ने घोड़े के पास जाकर उस पर रखे काँच का मर्तबान लेकर उसमें उन मगर के बच्चों को डाल दिया।

पिङ्गल ने पद्मपाद और उन मगर के बच्चों की तरफ़ सन्देह से देखा। "पद्मपाद! तुम बहुत भाग्यशाली हो। जीवित बाहर निकल आये हो। तीन सौ मुहरों के बारे में क्या किया जाय?"

पद्मपाद ने प्रेम से पिङ्गल का आलिमगर केन किया। "पिङ्गल! तीन सौ मुहरों की बात क्यों कहते हो? मैं तुम्हें लाखों, करोड़ों मुहरें दूँगा। संसार में सबसे बड़ा धनी बना दूँगा।

पर तुम्हें मेरे साथ भल्लूक पर्वत तक आना होगा। क्यों? आओगे मेरे साथ?"

"भल्लूक पर्वत! मैं तो उसका नाम सुनते ही डर जाता हूँ। सुना है कि वहाँ भूत रहते हैं पिङ्गल ने कहा।

"वे भूत-पिशाच तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इस संसार में, तीन बड़े मान्त्रिक हैं। उनमें से दो को तुमने स्वयं झील को बलि दे दिया है और तीसरा मैं हूँ।" पद्मपाद ने कहा।

"मुझे कुछ समझ में नहीं आया।" पिङ्गल ने कहा।



"क्योंकि मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ, इसलिये सुनो, सारी बातें तुम्हें सुनाता हूँ।" पद्मपाद ने यों कहा :

हम तीन भाई हैं। हमारा पिता, बड़ा मान्त्रिक था। उन्होंने अपनी मन्त्र-शक्ति से कई का उपकार किया। कई का अपकार भी किया। परन्तु उन्होंने छुटपन से ही बिना किसी पक्षपात के, हम तीनों को समान रूप से मन्त्र-विद्या सिखाई। मरने से पहले भी उन्होंने हम तीनों को बराबर जमीन-जायदाद बाँट दी। परन्तु वह पुस्तक, जिसमें मन्त्र-विद्या लिखी हुई है, किसी को न दी। उन्होंने इतना कहा-

"जो तुम में से सबसे अधिक शक्तिशाली होगा, उसी को यह मिलेगी।" यह कह कर वे मर गये।

उनके मरने के बाद, हम भाईयों में मन-मुटाव हो गया। हम में से हरेक ने वह पुस्तक लेनी चाही। आपस में तू तू मैं में होने लगी। बात इतनी बढ़ी कि हम एक दूसरे पर मन्त्र-शक्ति का उपयोग करने लगे।

हम एक दूसरे को मारने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि हमारे पिता जी के गुरु आए। वे हमारे झगड़े को देखकर दुःखी हुये। तीनों को एक जगह बिठाकर, उन्होंने कहा-"पिता जो पुस्तक छोड़ गये हैं, उसके बारे में तुम नहीं जानते; इसलिये ही झगड़ रहे हो। तुम्हारे पिता ने कहा तो है कि जो तुम में सबसे अधिक शक्तिशाली होगा, उसी को वह पुस्तक मिलेगी। इसलिये अगर तुम उस पुस्तक में लिखी मन्त्र शक्ति जानना चाहते हो तो पहले तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। हमने पूछा कि वह क्या है, तो उन्होंने यों कहा :

[अभी और है]





मदालसा

शत्रुजित नाम के राजा का एक लड़का था। उसका नाम ऋतुध्वज था। वह बुद्धि में बृहस्पति, सौन्दर्य में मन्मथ, पराक्रम में अर्जुन था। उसका स्नेह पाने के लिए हर जाति के लोग आया करते। नागलोक से नागराज के दो लड़के मैत्री के लिए ब्राह्मण युवकों का वेष धारण कर, ऋतुध्वज के पास आये। वे देखने में बहुत सुन्दर थे। यही नहीं, वे हमेशा ऋतुध्वज के निकट भी रहते। ऋतुध्वज भी उन्हें छोड़ कर एक क्षण नहीं रह पाता था। वे नागराज कुमार, दिन भर ऋतुध्वज के साथ रहते और रात को नागलोक वापस चले जाते।

एक दिन नागराज ने अपने लड़कों से पूछा-"तुम दिन भर कहाँ रहते हो? रात को ही घर आते हो! क्या बात है?"

तब उन्होंने अपने पिता से कहा- "पिता जी! हम दिन भर ऋतुध्वज राजकुमार के पास रहते हैं। वह बुद्धिमान है, पराक्रमी है। उसके समान तीनों लोकों में कोई नहीं है।"

यह सुन नागराज बड़ा सन्तुष्ट हुआ। "तो तुम उसके लिये उसके योग्य उपहार क्यों नहीं ले जाते ?" राजा ने पूछा।

"हम उसको भला क्या दे सकते हैं? अगर कभी उसको हमारी सहायता की ज़रूरत हुई, तो हम उसे अवश्य देंगे।" नागराज कुमारों ने कहा।

यह नागराजा भी मान गया।

इधर, अरण्य में, जब गालव मुनि तपस्या कर रहे थे, पातालकेतु नाम का राक्षस उन्हें सताने लगा। गालव यदि यज्ञ शुरू करता या साधना प्रारम्भ करता तो यह

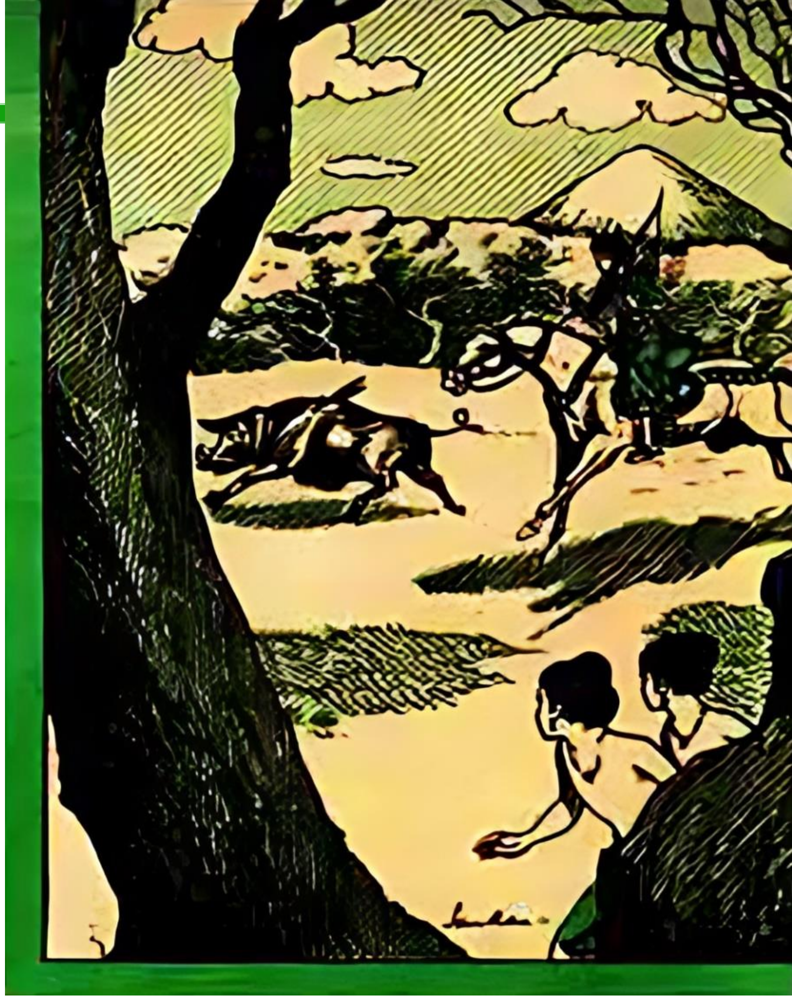
श्री ब्रजबल्लभ मिश्रा

राक्षस रूप बदल बदलकर उनको बाधा पहुँचाता। मुनि परेशान था। उसने आकाश की ओर देखकर एक लम्बी साँस छोड़ी। तुरन्त आकाश से एक अश्व मुनि के सामने उतरा। उसी समय एक आकाशवाणी इस प्रकार हुई:

"गालव! यह वह कुवलय अश्व है, जो तीनों लोकों में आ जा सकता है। इसको ले जाकर राजकुमार ऋतुध्वज को दो। वह इस घोड़े पर चढ़कर राक्षसों का संहार करेगा और तुम्हारे लिए तपस्या करने की सुविधा देगा।"

यह बात सुनते सुनते गालब मुनि उस अश्व पर चढ़कर शत्रुजित के पास गया और उससे ऋतुध्वज को भेजने के लिए कहा। ऋतुध्वज घोड़े पर चढ़ कर, गालव मुनि के साथ उसके आश्रम में गया।

सायंकाल हो गया । गालव अग्नि की अर्चना करने के लिए बैठा था। उस समय पातालकेतु जङ्गली सूअर का रूप रखकर अग्निशाला में घुसा और गालव को डराने लगा। मुनि बालकों का चिल्लाना सुनकर घोड़े पर ऋतुध्वज आया। सूअर पर उसने एक बाण छोड़ा। जङ्गली सुअर



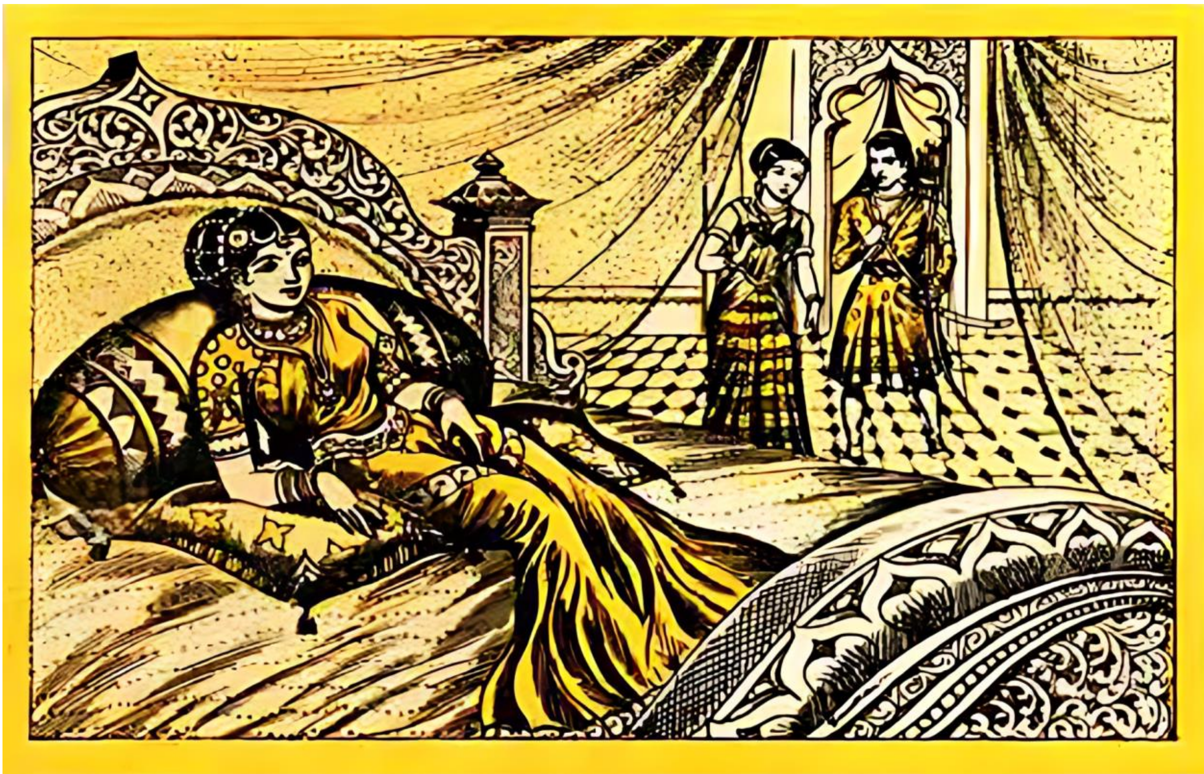
चीखता चीखता भागने लगा। ऋतुध्वज घोड़े पर चढ़ उसका पीछा करने लगा। भागते भागते सूअर एक गढ़े में कूदा .... वह पाताल लोक जाने का रास्ता था।

क्योंकि कुवलय अश्व तीनों लोकों में जा सकता था, इसलिये ऋतुध्वज, उस गढ़े में से- -जो गुफा-सी थी, जाने लगा। कुछ दूर जाने पर उसको एक चमचमाता नगर दिखाई दिया। वह उस नगर में प्रवेश कर रहा था कि उसे एक स्त्री दिखाई दी। उस नगर में उस स्त्री के सिवाय कोई न था। सूअर का भी कहीं पता न था।

राजकुमार ने उस स्त्री के पास जाकर पूछा-"तुम कौन हो? यह कौन-सा नगर है? तुम्हारा नाम क्या है?" वह स्त्री बिना कोई जवाब दिये घर के अन्दर चली गई। यह क्या अजीब बात थी, यह जानने के लिए राजकुमार घोड़े पर से उतर कर अन्दर गया। अन्दर एक कमरे में, एक मोटे गद्दे पर देवकन्या-सी, एक स्त्री लेटी हुई थी। उसकी बग़ल में, बाहर दिखाई दी स्त्री पंखा झल रही थी।

ऋतुध्वज को देखते ही उस स्त्री ने कहा-"राजकुमार! यह कन्या विश्वावस नाम के गन्धर्व राजा की लड़की है। इसका नाम मदालसा है। इसको पातालकेतु नाम के राक्षस ने धोखा देकर यहाँ लाकर रखा है। आनेवाले त्रयोदशी के दिन वह इससे विवाह करने जा रहा है। मेरी यह सहेली आत्म-हत्या करना चाहती थी, पर मैंने उसे रोक दिया। मैं इसकी सहेली हूँ। मेरा नाम कुण्डला है। मदालसा की रक्षा करने के लिए भगवान ने तुम्हें यहाँ भेजा है।"

ऋतुध्वज ने भी अपनी कहानी कुण्डला को सुनाई। उसने मदालसा के मन की बात

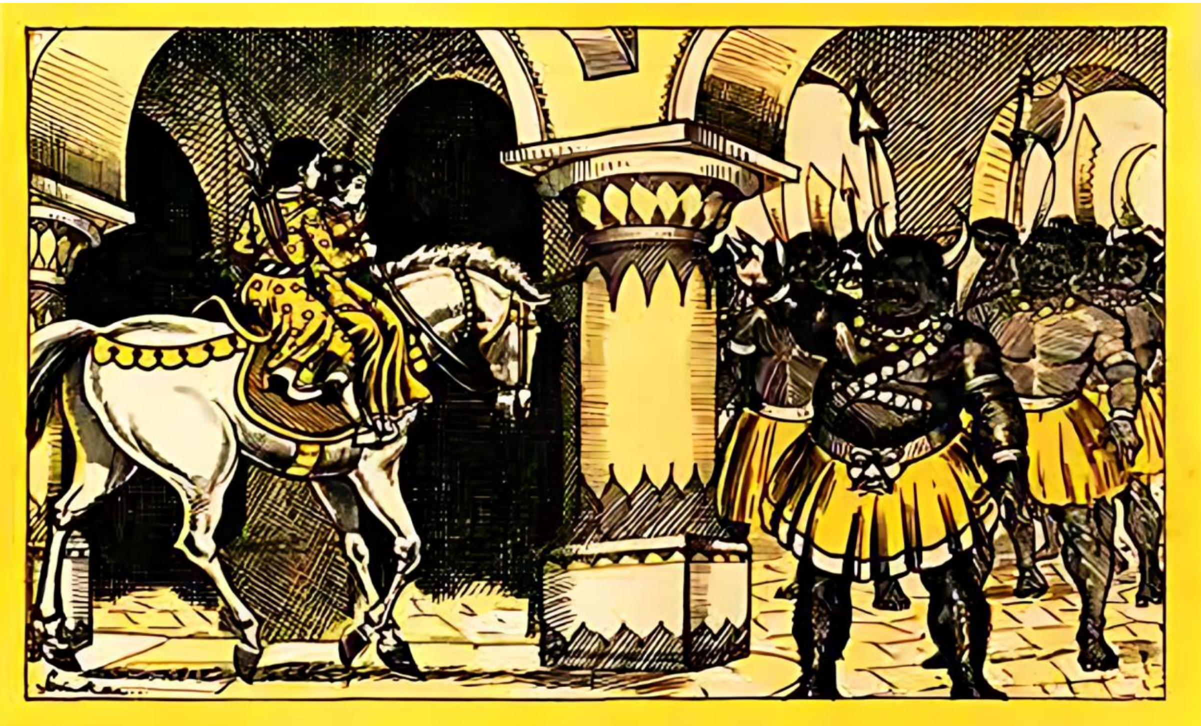


ताड़कर, ऋतुध्वज से कहा-"इसकी रक्षा करने की जिम्मेवारी तुम्हारी है।" और मदालसा का हाथ राजकुमार के हाथ पर रख, उसने उनका पाणिग्रहण करवा दिया।

फिर ऋतुध्वज मदालसा को अपने घोड़े पर चढ़ाकर, जिस रास्ते से आया था, उस रास्ते से भूलोक की ओर निकल पड़ा। रास्ते में पातालकेतु अपनी सेना लिये तैयार खड़ा था। उसने उन दोनों को रोककर पूछा-"कहाँ जा रहे हो? ठहरो।"

तुरन्त ऋतुध्वज ने अग्नि बाण छोड़ा। सब राक्षस भस्म हो गये। ऋतुध्वज ने घर जाकर मदालसा से विवाह कर लिया। सवेरे से दुपहर तक ऋतुध्वज कुवलय अश्व पर चढ़कर मुनियों की रक्षा करता, भूलोक पर विचरता। वह अपनी पत्नी के साथ सुख से दिन काट रहा था। क्योंकि वह कुवलय अश्व पर सवार होकर घूमा-फिरा करता था, इसलिये उसको सब कुवलयाश्व कहने लगे।

ऋतुध्वज से मारे गये पातालकेतु का एक छोटा भाई था। उसका नाम तालकेतु था। उसने ऋतुध्वज से बदला लेने की सोची। क्योंकि उसने उसके भाई को मार





दिया था, और उस स्त्री से विवाह भी कर लिया था जिससे उसका भाई शादी करना चाहता था। वह ऋषि का रूप धारण कर, जमुना के किनारे तपस्या का ढोङ्ग करने लगा।

एक बार राजकुमार आश्रमों का दौरा करता करता उस तरफ़ आया। उस कपटी मुनि को नमस्कार करके पूछा-"आपको कोई राक्षस तो नहीं सता रहे हैं?"

"बेटा! जब तुम जैसे पराक्रमी हमारी रक्षा कर रहे हो, तो हमें राक्षसों का क्या भय? फिर भी मैं तुमसे एक मदद चाहता हूँ। देने का वादा करो तो मैं बताता हूँ।" तालकेतु ने कहा।

"कहिये, ज़रूर करूँगा।" राजकुमार ने कहा।

"में जल में डूबकर जलयज्ञ करने जा रहा हूँ। उसके लिए मुझे सोना चाहिये। इसलिए मुझे अपने गले का हार दो और किनारे पर खड़े हो जाओ। और देखो कि कोई राक्षस न आये।"

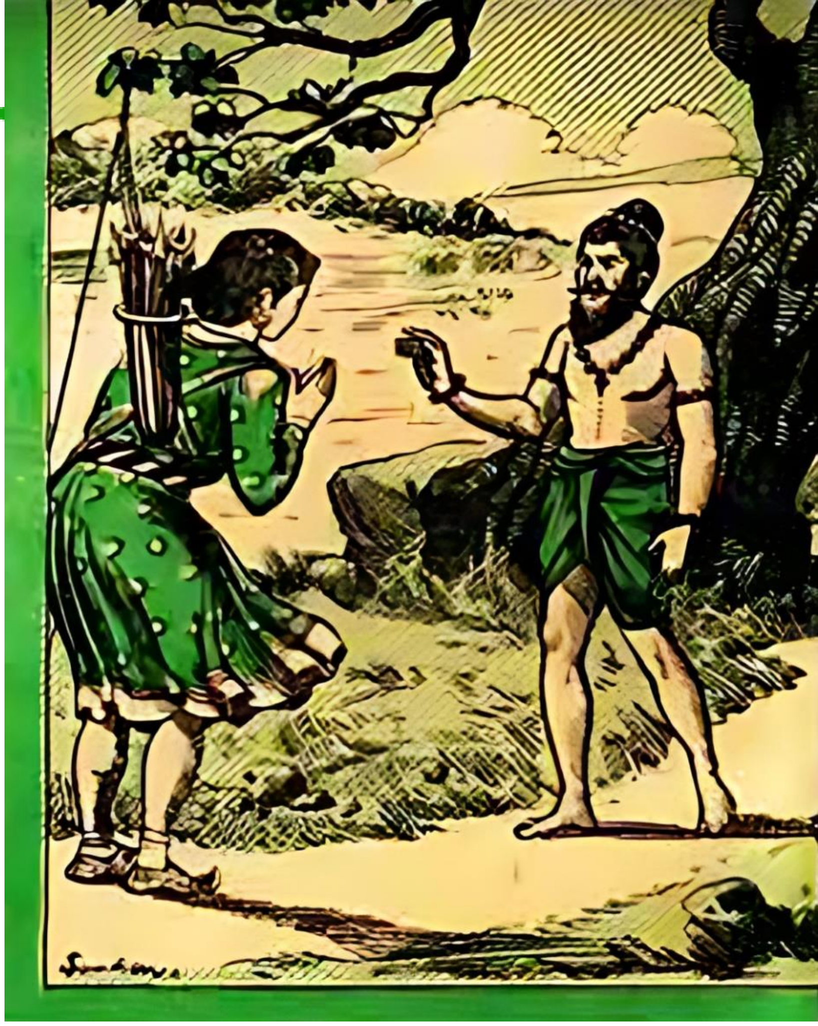
राजकुमार ने उसका विश्वास कर लिया और अपना हार देकर, धनुर्बाण हाथ में लेकर वह खड़ा हो गया। राक्षस पानी की तह में तैरता, परले पार पहुँचा और सीधे शत्रुजित के पास गया। उसने उससे कहा-"महराज! मुझे एक दुख समाचार सुनाना पड़ रहा है। राक्षसों ने तुम्हारे लड़के को मार दिया है। मरते मरते तुम्हारे लड़के ने मुझे यह हार दिया। तपस्वियों को सोने से क्या वास्ता? यह आपको देने के लिए, और यह खबर पहुँचने के लिए यहाँ आया हूँ।" यह कहकर वह चला गया। यह पता लगते ही कि पति मर गये हैं, मदालसा ने भी प्राण छोड़ दिये। राजा और रानी भी बहुत दुःखी थे।

तालकेतु फिर जमुना में घुसा। और राजकुमार के पास जाकर उसने कहा-"बेटा! हमारा यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया है, अब तुम जा सकते हो।"

ऋतुध्वज घोड़े पर सवार होकर अपने नगर वापिस चला गया। उसे कहीं भी हलचल न दिखाई दी। सर्वत्र शान्ति थी, कई उसकी ओर आश्चर्य से देख रहे थे। उसे कुछ समझ में न आया। वह राजमहल में आया। "बेटा! तुम जीवित हो।" कहते हुए माँ-बाप ने उसका आलिङ्गन किया। पर उनका दुःख समाप्त न हुआ।

"आप क्यों शोक कर रहे हैं? क्या हुआ?" उसने माँ-बाप से पूछा। उन्होंने उसे बताया कि उसकी मृत्यु की उबर सुनकर मदालसा मर गई थी।

ऋतुध्वज के दुःख की सीमा न थी। पत्नी की मृत्यु के बाद भी अपने को जीवित पा, अपने को कोसने लगा। उसने आत्म-हत्या करने की ठानी, पर उसे महापाप समझकर, वह इरादा छोड़ दिया। "मैं इस जन्म में किसी और से विवाह न करूँगा।" उसने शपथ ली। राजकुमार का दुख



देखकर उसके मित्र दुःखी हुए। नागराज के लड़कों ने अपने पिता के पास जाकर कहा-"अगर हम सहायता करना चाहते हैं तो इससे अच्छा मौका न मिलेगा। अगर हमने मदालसा को जैसे तैसे पुनः जीवित कर दिया, तो उसको बेहद खुशी होगी।" उन्होंने पिता को सारी घटना सुनाई।

नागराज ने थोड़ी देर सोचकर कहा- "मैं भरसक कोशिश करूँगा।" उसने कभी सरस्वती देवी की पूजा करके गाने की अद्भुत प्रतिभा पाई थी। उसने कैलास जाकर शिव के समक्ष गाया।

शिव ने उसके सङ्गीत पर मुग्ध होकर पूछा-"तुमने इतना सुन्दर सङ्गीत सुनाकर मुझे सन्तुष्ट किया! बताओ, में तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ?"

"भगवान! मदालसा को जीवित कर दीजिए।" नागराज ने कहा।

"उसका तो दहन संस्कार भी हो गया है, कैसे जीवित करूँ?" शिव ने पूछा।

"भगवान! उसकी फिर से सृष्टि करो। मैं अपने आप राजकुमार को कन्या दान करना चाहता हूँ।" नागराज ने कहा। "तो तुम पिता का श्राद्ध करके, मध्य पिण्ड को खाओ। मदालसा तुम्हारे सिर में से फिर जन्म लेगी।" शिव ने कहा।

नागराज ने उसी प्रकार किया। मदालसा उसके सिर में से जीवित निकल आई। नागराज ने उसे एक जगह छुपा दिया।

फिर उसने अपने लड़कों को बुलाकर कहा-"बेटो! तुम इतनी बार ऋतुध्वज के पास आते जाते रहते हो! पर तुम एक बार भी ऋतुध्वज को अपने यहाँ नहीं लाये। तुमने कभी भी उसका आतिथ्य न किया। यह भी क्या बात है? वह पत्नी के शोक में सूख रहा है।



यहाँ ले आओ। हम उसके मनोरञ्जन का प्रबन्ध करेंगे।"

नागकुमारों को पिता का यह प्रस्ताव जँचा। उन्होंने ऋतुध्वज के पास जाकर कहा-"मित्र! तुम एक बार भी हमारे घर नहीं आये। हमारे पिता जी ने तुम्हें बुलाकर ले जाने के लिए कहा है। नहीं आओगे ?" उसे उन्होंने बहुत मनाया।

राजकुमार मान गया और उनके साथ चला गया। नागकुमार उसे गोमती नदी के पास ले गये । उन्होंने उसको भी अपने साथ डूबने के लिए कहा। पानी में डूबते ही नागकुमारों का ब्राह्मण वेष चला गया और वे नाग बन गये। उनके फण चमचमाने लगे।

"यह क्या? क्या तुम ब्राह्मण नहीं हो? साँप हो? मुझसे यह बात क्यों छुपाये रखी?" राजकुमार ने उनसे पूछा।

"मित्र! अगर तुम यह जान जाते कि हम नाग हैं, तो तुम हमें अपने पास नहीं फटकने देते। इसी डर से हमें तुम्हें धोखा देना पड़ा। हमें क्षमा करो।"नाग-कुमारों ने कहा।



"अगर तुम नाग हो, तो कोई बात नहीं, मुझे इसकी परवाह नहीं है। अब भी तुम पहले की तरह मेरे मित्र हो।" राजकुमार ने कहा।

नागराज ने राजकुमार का खूब आतिथ्य किया। उसका मनोरञ्जन किया। उसने मणि सिंहासन पर उसको अपने पास बिठाया। "बेटा! मेरे लड़के हमेशा तुम्हारी ही याद करते रहते हैं। तुम जैसे दामाद पाने की इच्छा से ही मैंने तुम्हें यहाँ बुलवाया है। मुझे पता लगा है कि तुम्हारी पत्नी गुज़र गई है। तुम नौजवान हो, इसलिए तुम मेरी लड़की से विवाह कर लो। में बड़ा खुश होऊँगा--यही उपहार मुझे तुम्हें देना है।" नागराज ने कहा।

"क्षमा कीजिये। मैंने शपथ कर रखी है कि सिवाय मदालसा के मैं किसी और से शादी न करूँगा।" राजकुमार ने कहा।

"नागकुमारी को देखकर, तुम्हारा इरादा जरूर बदल जाएगा।" राजा ने कहा। राजा ने मदालसा को बुलाने के लिए नाग-कन्याओं को भेजा। मदालसा आई। पति-पत्नी एक दूसरे को देखकर बहुत खुश हुये।

जो कुछ गुज़रा था, नागराज ने राजकुमार को कह सुनाया। "यह पहले ज़रूर तुम्हारी पत्नी थी, पर अब यह मेरी लड़की है। तुम्हें अपना दामाद बनाने के लिए मैं तुम्हारा पुनः विवाह कर रहा हूँ।" नागराज ने कहा।

उन दोनों का, नागलोक में वैभव के साथ विवाह हुआ। नागराज ने ऋतुध्वज और मदालसा को मणि, सोना, आदि बहुमूल्य चीजें भेंट दीं। उनको मर्यादा के साथ उनके घर भेज दिया।





बहुत समय पहले, राजपुताने में जयसिंह नाम का एक राजा हुआ करता था। उसे चित्र लेखन का बड़ा शौक था। उसके दरबार में एक बड़ा चित्रकार रहा करता था। वह चित्रलेखन में बड़ा माहिर था। जयसिंह उससे अपना चित्र बनवाना ही चाहता था कि चित्रकार को कोई बीमारी हो गयी और वह अचानक मर गया। उस दिन से उस चित्रकार का आसन खाली रहा।

एक बार हिमालय से हेमचन्द्र नाम का एक गरीब चित्रकार राजपुताना आया। हेमचन्द्र जान गया था कि जयसिंह के दरबार का चित्रकार मर गया था और उसकी जगह अभी तक नहीं भरी गई थी। यह सोचकर कि वह उस नौकरी को पा सकेगा, वह तीन दिन स्वच्चर पर भूखा प्यासा, जङ्गल-पहाड़ों को पार करता हुआ, जयसिंह के पास आया था।

पहले, राज-सैनिकों ने हेमचन्द्र को राजमहल में नहीं जाने दिया। "मैं चित्रकार हूँ। राजा को दिखाने के लिए चित्र लाया हूँ।" उसने कहा। तब उन्होंने उसे अन्दर जाने दिया। हेमचन्द्र ने राजा का दर्शन कर बड़े विनीत भाव से उससे कहा-" भूखा प्यासा, मैं कितनी ही दूर से आपको देखने आया हूँ। ये मेरे बनाये हुए चित्र हैं। आप इन्हें देखेंगे तो आपको मेरी कला के बारे में पता लगा जाएगा।"

उन चित्रों को देखकर राजा बड़ा सन्तुष्ट हुआ। हेमचन्द्र सचमुच बड़ा चित्रकार था। जयसिंह यह न जान सका कि इतने बड़े चित्रकार को, भूखा प्यासा, इतनी दूर क्यों आना पड़ा।

श्रीमती उषा महरोत्रा

“मुझे ये चित्र बहुत पसन्द आये हैं। बताओ, इनका क्या दाम है।" जयसिंह ने हेमचन्द्र से पूछा।

"मुझे भूख लग रही है। पहले मुझे भोजन दिलवाइये। मुझे मालूम हुआ है कि चित्रकार का स्थान आपके दरबार में बहुत दिनों से ख़ाली है। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो वह स्थान मुझे दिलवाइये। वह ही मेरे लिये बहुत कुछ है।" हेमचन्द्र ने कहा।

राजा मान गया और उसको राज सैनिकों के साथ भोजनालय में भेज दिया। हेमचन्द्र ने पेट भर कर खाना खाया। उसके खच्चर को राजा के अस्तबल में बाँध दिया गया। अगले दिन से ही हेमचन्द्र जयसिंह के दरबार में, चित्रकार के आसन पर बैठने लगा। क्योंकि फिर चित्रकार की नियुक्ति हो गई थी, जयसिंह ने अपना चित्र बनवाना चाहा। उसने हेमचन्द्र से कहा-"दरबार में हमारे पूर्वजों के चित्र हैं। मेरे चित्र बनाकर, अगली पीढ़ीवालों के लिए, मेरी शक्ल-सूरत देखने का अवसर दो।"

"आपका एक चित्र ही क्या, सिंहासन पर आपको और रानी को बिठाकर,



आपके मन्त्री, सामन्त, सेना नायक-- सबके चित्र बना दूँगा। दरबार में मुझे एक अच्छी दीवार दिखाइये, बाकी सब मैं देख लूँगा।" हेमचन्द्र ने कहा।

राजा बड़ा खुश हुआ। राज सभा का चित्र बनाने की उसने उसको अनुमति दे दी। राज दरबार में कई बड़े बड़े तोन्दू थे, कई कुबड़े थे, कई काने थे, कई ऐंचे थे। उनमें से एक एक ने हेमचन्द्र के पास आकर कहा-"जब मेरा चित्र बनाओ तो मेरी झुकी पीठ न बनाना, मेरा चित्र ऐसा बनाओ जिसमें मेरी दोनों आँखें

हो, मेरी कानी आँख न बनाना। हमारी बात न मानोगे तो तुम्हें खूब मारेंगे पीटेंगे।" हेमचन्द्र को डराया धमकाया।

यह बात राजा को भी मालूम हुई। उसने हेमचन्द्र को बुलाकर कहा- "अगर तुमने जो जैसे हैं, वैसे उनको न बनाया, तो मैं तुम्हें फ्राँसी पर चढ़वा दूँगा। याद रखना।"

हेमचन्द्र को ऐसा लगा, मानों सामने कुआँ हो और पीछे गढ़ा। चाहे कुछ करे उसको मौत सामने नज़र आयी। उसने बहुत देर तक सोच कर एक रास्ता ढूँढ निकाला।

चित्र बनाने के लिये एक दीवार निश्चित कर दी गई। एक परदा लगा कर, तीन सहायकों के साथ खूब खाता-पीता हेमचन्द्र मजे में समय बिताने लगा।

एक महीना बीत गया। राजा ने हेमचन्द्र को बुलाकर पूछा कि चित्र कहाँ तक पूरा हो गया है।

"महाराज! मैं काम कर रहा हूँ। जल्दी ही पूरा हो जाएगा।" हेमचन्द्र ने कहा।

महाराज ने फिर कुछ दिनों बाद उससे चित्र के विषय में पूछा। तब



हेमचन्द्र ने जवाब दिया-"महाराज! बस अब थोड़ा-सा काम बाकी रह गया है।" हमेशा उसका यही जवाब रहता।

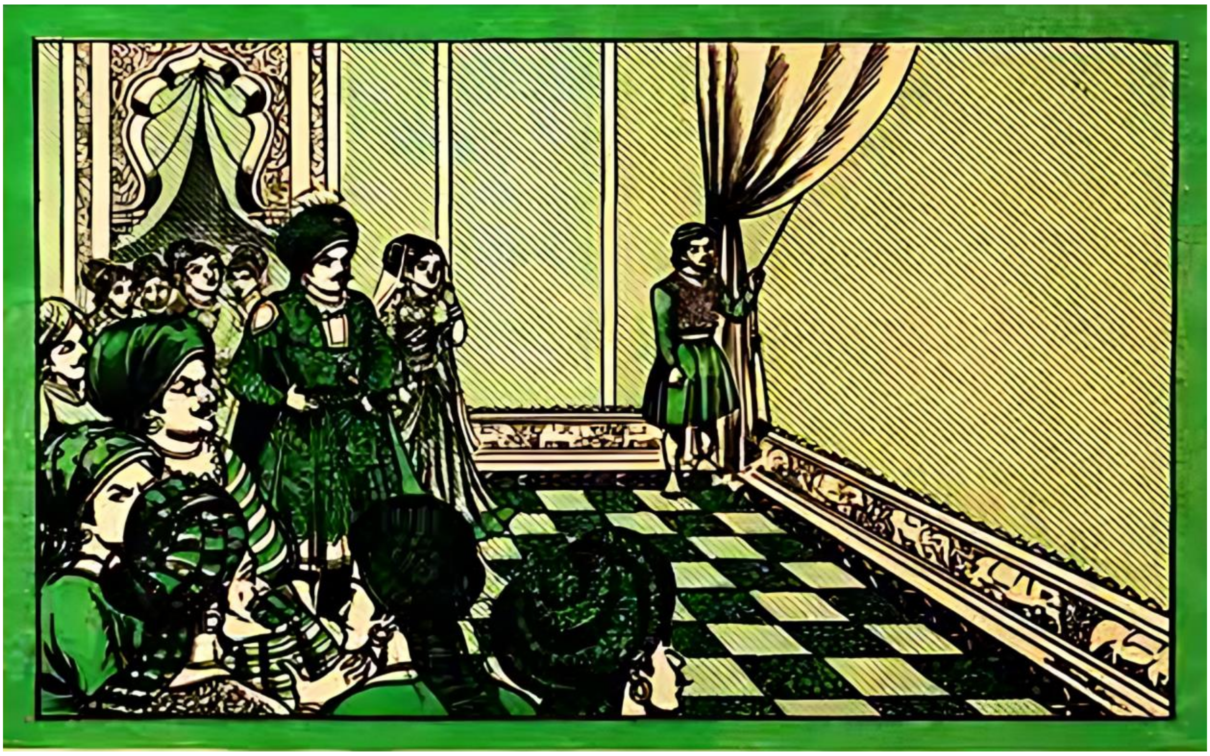
इस प्रकार तीन महीने बीत गये। मगर चित्र को पूरा न होता देख राजा को गुस्सा आ गया। उसने हेमचन्द्र से पूछा-"अगर एक सप्ताह में चित्र न पूरा हुआ तो मैं तुझे कड़ी सज़ा दूँगा।"

यह सुन हेमचन्द्र ने कहा-"चित्र पूरा हो गया है। कल अच्छा दिन है। अगर आप सपरिवार आयें तो चित्र का अनावरण किया जा सकता है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो, यह खबर सब दरबारियों को सुनाई।

अगले दिन राजा, रानी और राज्य कर्मचारी चित्र देखने आये। दीवार पर तब भी परदा लगा हुआ था।

चित्र देखने के लिए आये हुए व्यक्तियों से हेमचन्द्र ने कहा-"आप सब का चित्र बनाया है। सब अपना अपना चित्र ध्यान से परखिये। परन्तु पहले में एक बात अर्ज करना चाहता हूँ। आपमें से उन लोगों को ही चित्र दिखाई देगा, जो अच्छे घराने में पैदा



हुए हैं, दूसरों को नहीं दिखाई देगा।"
उसने परदा हटा दिया।

दीवार पर एक भी चित्र न था। परन्तु किसी ने भी कुछ न कहा। राजा भी चुप रहा। सब के सब यह सोचने लगे कि सिवाय उसके चित्र सब को दिखाई दे रहा था।

राजा के विदूषक ने कहा-"जाने मेरा जन्म भी कहाँ हुआ है कि मुझे केवल खाली दीवार दिखाई दे रही है। उस पर कोई चित्र नहीं है।"

दूसरे भी एक एक करके कहने लगे- "हमें भी चित्र नहीं दिखाई दे रहा है।"

यह बात साफ़ हो गई कि हेमचन्द्र सब की आँखों में धूल झोंकना चाहता था। राजा ने दाँत कटकटाते हुए कहा-"नीच कहीं का! इतने लोगों को धोखा दिया है? तुझे फाँसी दे दी जाये तो भी कोई पाप नही है।"

हेमचन्द्र ने सविनय हाथ जोड़कर कहा-"ठीक है हुज़ूर! मुझे फाँसी पर चढ़ा दीजिये। मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि मैं इतने दिन जीवित रहूँगा। परन्तु मेहरबानी करके मुझे

सोने की रस्सी से फाँसी दिलवाइये। क्योंकि लक्ष्मी की मुझ पर क़तई कृपा नहीं है। फाँसी देते समय हो सकता है कि सोने की रस्सी ही टूट जाये।"

यह सुनते ही राजा का गुस्सा काफूर हो गया। वह हँसने लगा। हेमचन्द्र भले ही बड़ा चित्रकार हो, पर वह दरबार में रहने लायक नहीं था, यह बात साफ़ हो गई थी। फिर भी हेमचन्द्र को राजा ने कुछ सोना दिया। हेमचन्द्र जिस खच्चर पर आया था, उसी पर चला गया।



पारस



विक्रमार्क ने अपना हठ न छोड़ा। पेड़ के पास फिर गया। शव को कन्धे पर डालकर चुपचाप श्मशान की ओर चला। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा! तुम इस आधी रात में बहुत मेहनत कर रहे हो। तुम्हारा मन बहलाने के लिये एक कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई:

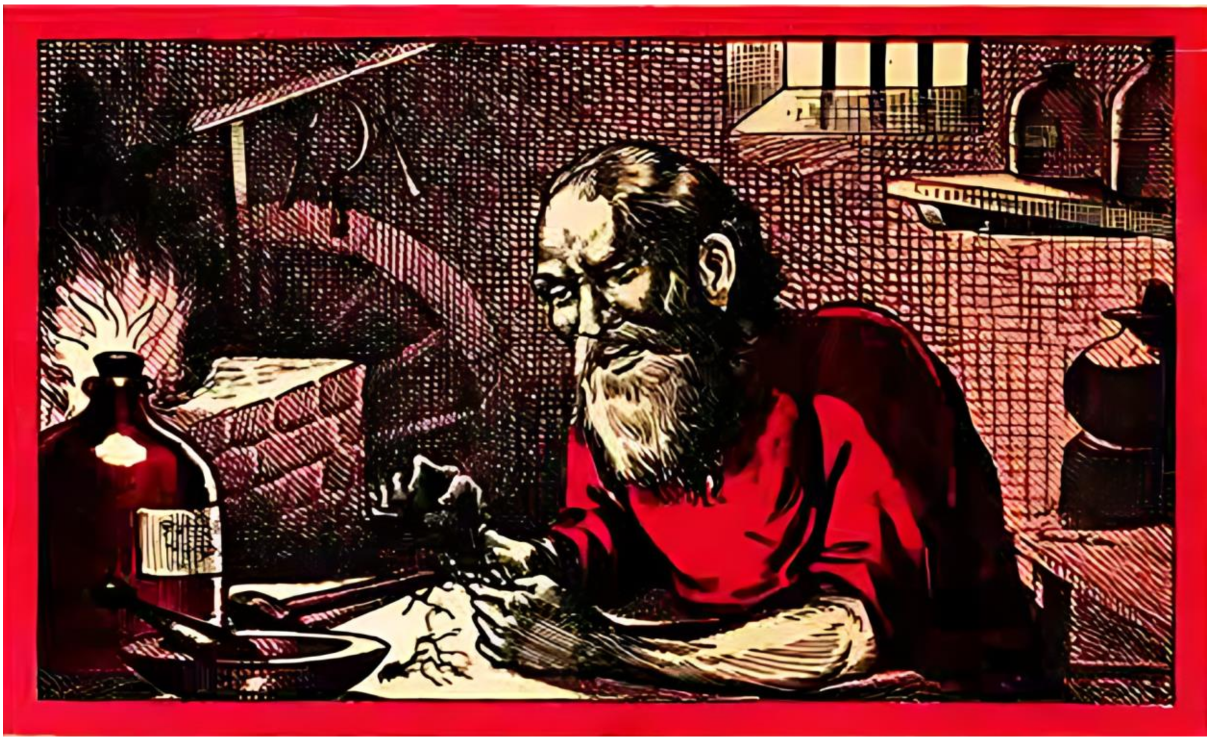
एक ज़माने में मराल देश का राजा सुकेतु था। वह बहुत पराक्रमी था, पर धनी नहीं था। उस देश में बारह वर्ष तक अकाल रहा, इसलिये वह बहुत गरीब हो गया। इस कारण सुकेतु अपने राज्य का विस्तार न कर सका। अकाल के कारण कई मर गये। कई दूर देश चले गये।

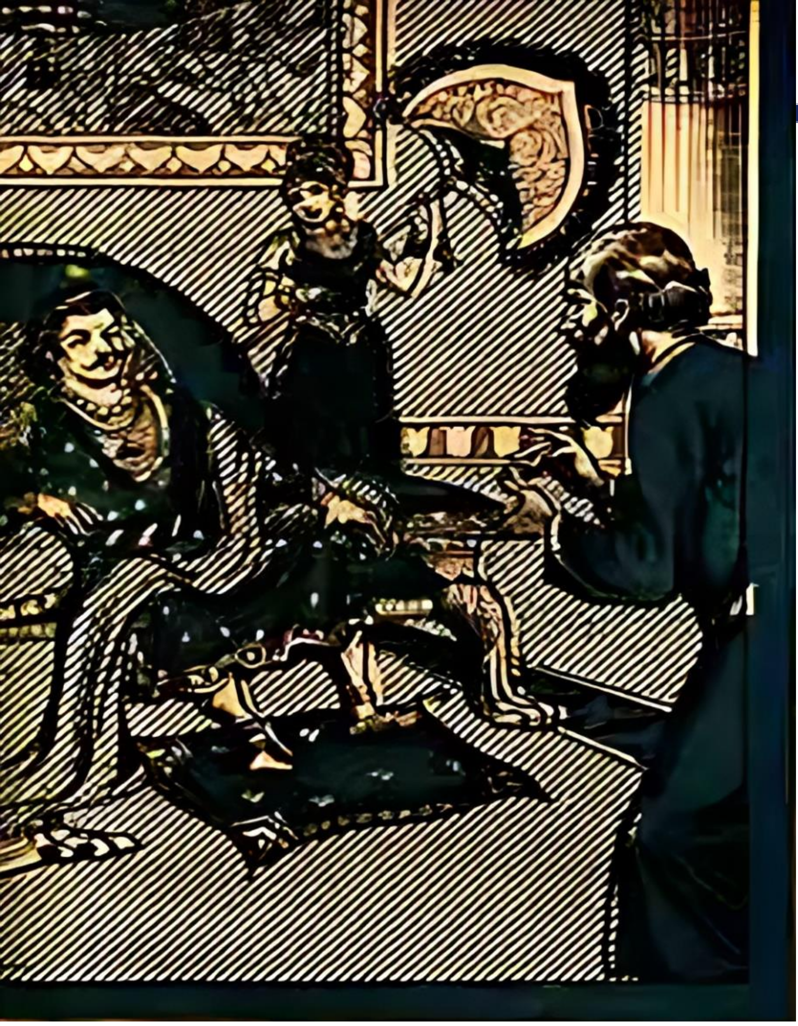
उस समय मराल देश में एक सुनार आया। वह बहुत बूढ़ा था। उसका नाम विश्वकर्मा था।

विश्वकर्मा ने सुकेतु के दर्शन करके कहा-"महाराज! में कई दिनों से सोना बनाने की विद्या सीखने की कोशिश कर रहा हूँ। आपने एक साल का समय मुझे दिया तो में बहुत-सा सोना तैयार कर सकूँगा। तब तक कृपया आप मेरा पालन-पोषण का भार लीजिये।"

महाराजा सुकेतु ने सोचा कि अगर विश्वकर्मा की सहायता से बहुत-सा सोना बन सका, तो उसके और उसके देश के बुरे दिन लद जायेंगे। "अच्छा! तुम एक साल तक राज महल में ही रहो। तुम्हारे लिये मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा। फिर जो सोना तुम बनाओगे, उसमें से पाँच सेर तुम रख लेना और बाकी मुझे दे देना होगा।" सुकेतु ने विश्वकर्मा से कहा।

विश्वकर्मा मान गया। उसके लिए एक कारखाना बनाया गया जिसमें तेजाब, मर्तबान, आदि, रखे गये। तरह तरह के लोहे दिये गये। वह वहाँ बैठा रात दिन काम करता रहता।





सप्ताह और महीने बीत गये। जो कुछ जब कभी वह माँगता राजा देता। समय सुख से कटता जाता था। देखते देखते एक साल पूरा हो गया। राजा ने विश्वकर्मा को बुलाकर पूछा-"कहाँ है तुम्हारा पारस का पत्थर?"

"महाराज! अभी परीक्षण ख़तम नहीं हुए हैं। ख़तम होने जा रहे हैं। अगर आपने छः महीने की और मोहलत दी तो आपको मैं मन चाहा सोना बनाकर दे दूँगा।" विश्वकर्मा ने कहा।

राजा को बड़ा गुस्सा आया।

"तुमने झूठ कहा कि एक साल में सोना बनाकर दे दोगे। अगर तुमने छः महीने में सोना बनाकर न दिया तो खबरदार, तुम्हारा सिर कटवा कर क़िले पर लटकवा सकता हूँ। तुम पर मैं बहुत भरोसा किये हुए हूँ। देश में अगर गरीबी ख़तम हो गई तो सेना इकट्ठी करके आसपास के राज्यों को जीतकर मैं सम्राट होना चाहता हूँ। तुमने मेरी अशाओं पर पानी फेर दिया है। तो भी मैं तुम्हें इस बार माफ़ करता हूँ। अगली बार क्षमा नहीं करूँगा।" सुकेतु महाराजा ने कहा।

विश्वकर्मा को समझ में न आया कि क्या करे। वह सोना बनाना नहीं जानता था। सोना बनाने की कोशिश करते करते वह बूढ़ा हो गया था। पेट भरता न था, इसलिये झूठ बोल बोल कर गुज़ारा करता था।

यह सोचकर कि एक साल के ख़तम होते होते वह जरूर मर जायेगा, इसलिये ही उसने राजा से एक वर्ष की अवधि माँगी थी। परन्तु मौत न आई। विश्वकर्मा मजबूरन मरना नहीं चाहता था। अब उसे

छः महीने का और समय मिल गया था। परन्तु छः महीने बाद क्या होगा, वह बूढ़ा समझ नहीं पाता था।

विश्वकर्मा ने भागना चाहा। परन्तु वह भाग न सका। राजा के हुक्म पर, उस पर रात-दिन सिपाहियों का पहरा रहता। राजा की बातें उसके कानों में गूँज रही थीं। वह जान गया कि उसका सिर कटवा दिया जाएगा।

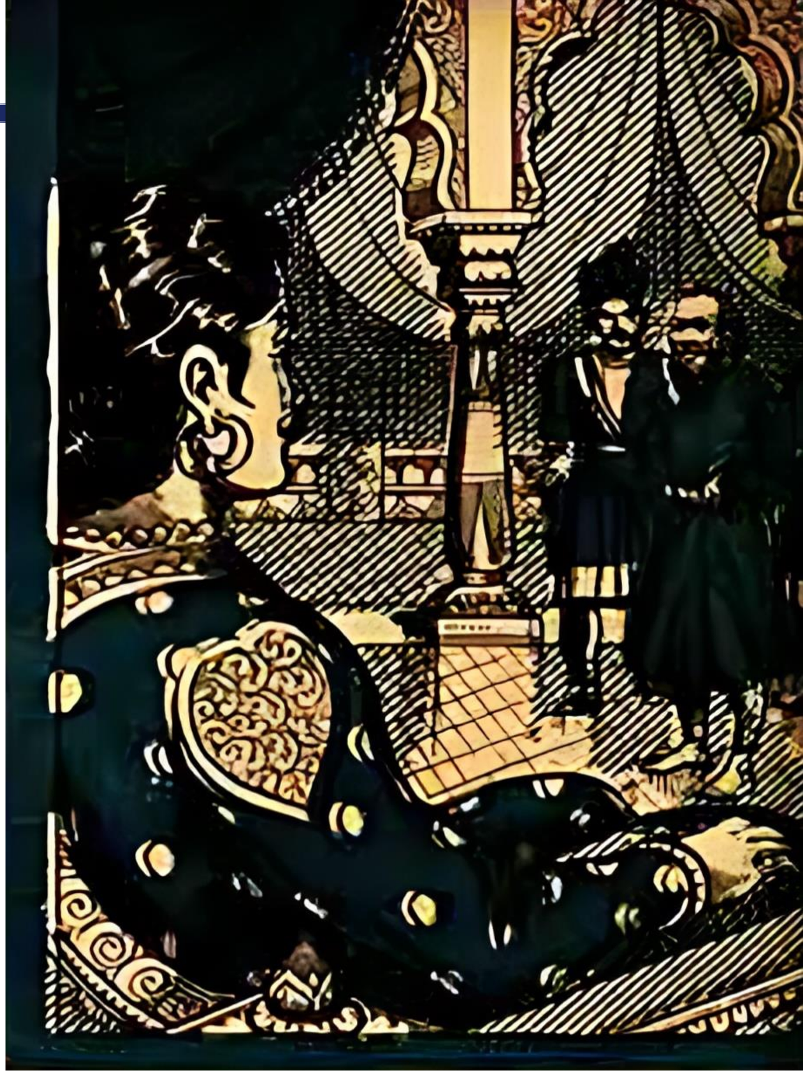
छः महीने बीत गये । राजा ने विश्वकर्मा को बुलाकर पूछा-"क्या किया?"

"महाराज! सोना बनाना मेरे भाग्य में नहीं लिखा हैं। अगर भगवान ने मुझे एक हज़ार वर्ष भी जीने को दिये, तब भी मैं सोना न बना पाऊँगा।" विश्वकर्मा ने निर्भय होकर कहा।

"इसके लिये मैं तुम्हें क्या सजा दूँगा, यह तो तुम जानते ही होगे।" सुकेतु ने गुस्से में कहा।

"मुझे सज़ा देने की आपको ज़रूरत नहीं है। मैंने सोने से भी बढ़कर एक अच्छी चीज़ ढूँढ़ निकाली है।" विश्वकर्मा ने कहा।

"क्या है वह?" राजा ने पूछा।



"चान्दी! वह मामूली चान्दी नहीं है। कई जड़ी-बूटियों से साफ़ की हुई चान्दी है।"

"उससे मेरा क्या फायदा है?" राजा ने पूछा।

"महाराज! उस चान्दी से मैं आपकी तलवार का मूठा बनाऊँगा। अगर आपने वह तलवार हाथ में ली तो बड़े से बड़ा शत्रु भी उसका शिकार हो जाएगा। आप जितना सोना चाहते हैं, उतना वह तलवार ही आपको कमाकर दे देगी। मेरा विश्वास कीजिए।" विश्वकर्मा ने कहा।

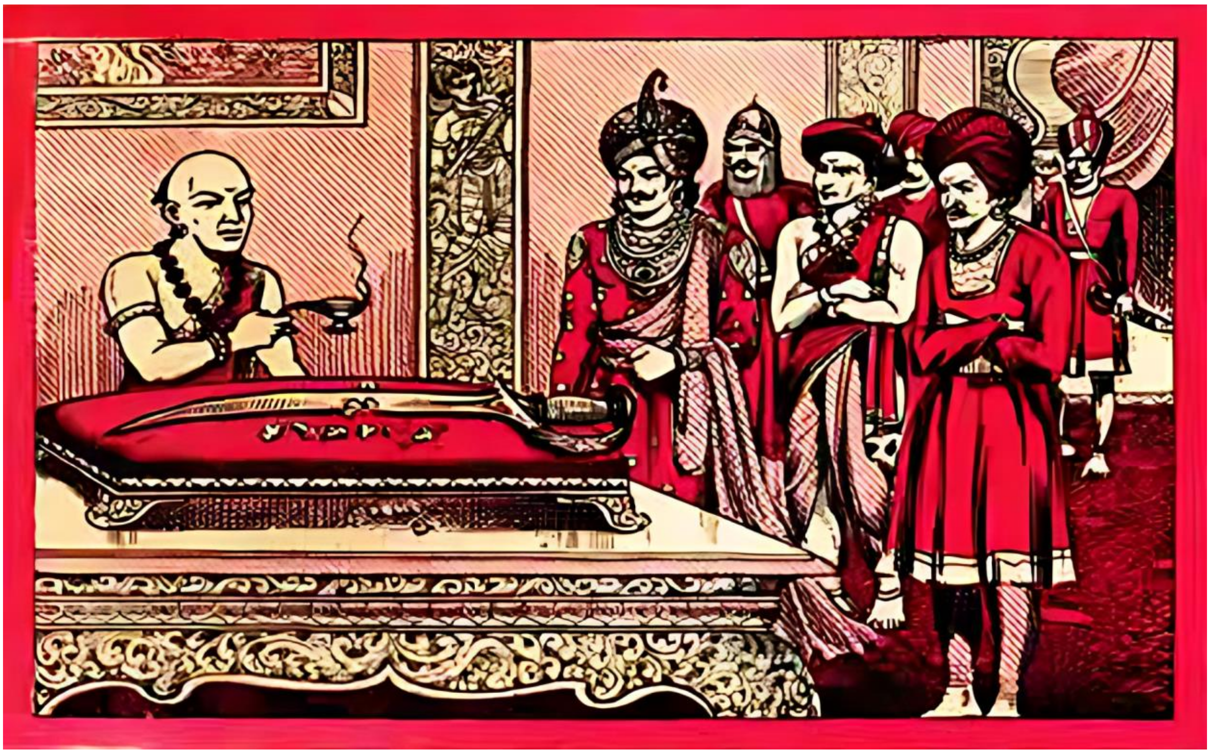
"तुम क्या मुझे फिर धोखा दे रहे हो?" राजा ने पूछा।

"महाराज! मैं आपको धोखा देकर कहाँ जाऊँगा? जब आपको यह पता लगे कि मेरे बनाये हुए तलवार में वह प्रभाव नहीं है, तभी मेरा सिर कटवा देना।" विश्वकर्मा ने कहा। राजा मान गया। विश्वकर्मा ने राजा की तलवार मँगाकर, उसके मूठे पर, उसने चान्दी की परत मढ़ दी। राजा ने उस तलवार का जलूस निकलवाया। उसकी पूजा आदि करवायी। विश्वकर्मा को एक जागीर इनाम में दी।

यह खबर चारों ओर फैल गई। आसपास के राजा घबराने लगे। कई ने उस ख़बर का विश्वास नहीं किया। "उस विश्वकर्मा ने सुकेतु महाराज की आँखों में धूल झोंक दी है।" कई ने कहा।

जल्दी ही अपनी थोड़ी बहुत सेना इकट्ठी करके, सुकेतु ने पड़ोस के राज्य पर हमला किया। पड़ोस का राजा मन्त्रियों से सलाह-मशवरा करने लगा।

"महाराज! सुकेतु अपने तलवार के बूते पर थोड़ी सेना लेकर हम पर हमला कर रहा है। हमें डरने की कोई जरूरत



नहीं है। हमें युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये।" कई मन्त्रियों ने सलाह दी।

"उस तलवार में कोई महिमा है, नहीं तो क्या वह इतनी थोड़ी सेना लेकर हम पर हमला करेगा? सुकेतु उतना पागल नहीं है। सब कह रहे हैं कि वह तलवार शत्रु का गला काटकर ही रहेगी। इसलिये सुकेतु राजा से सन्धि कर लीजिये।" कई और ने कहा।

पड़ोस का राजा डर गया। वह दूतों को लेकर सुकेतु की छावनी पर गया। सुकेतु अपने हाथ में तलवार लेकर बैठा था। पड़ोस के राजा को उस तलवार में, मानों यम देवता दिखाई दिया। वह बिना हिचकिचाये सुकेतु का सामन्त होने के लिए मान गया।

इसके बाद सुकेतु की कहीं भी पराजय न हुई। कई राजाओं ने ज़िद करके सुकेतु से युद्ध किया। परन्तु सुकेतु का तलवार उठाना था कि सेना इधर उधर तितर बितर होकर, मैदान छोड़कर भाग जाती। बहादुर सुकेतु और राजा की मुठभेड़ होती और राजा मारा जाता।



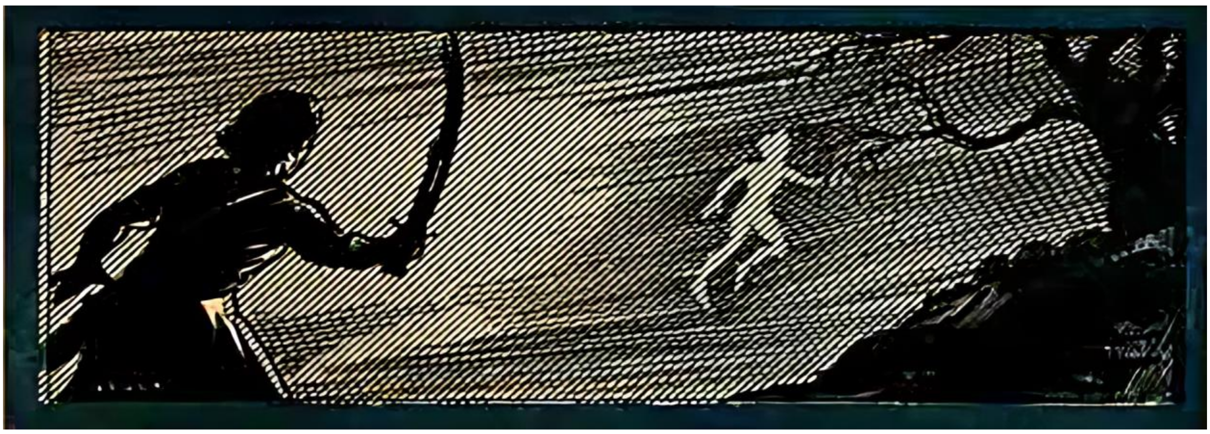
इस प्रकार दो तीन राजाओं के मारे जाने पर दूतों के भेजने पर, और राजा आकर उसका आधिपत्य स्वीकार कर लेते। सुकेतु सम्राट हो गया। मराल देश का दारिद्य दूर हो गया। विश्वकर्मा का नाम हमेशा के लिए अमर हो गया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा- "राजा! विश्वकर्मा जो सालों की कोशिश के बाद भी सोना न बना सका था, वह कैसे इस महिमापूर्ण चान्दी को छः महीने में बना सका? जब वह चान्दी बना सकता था तो वह क्यों झूठ बोल बोलकर ज़िन्दगी बसर करता आया था? अगर तुमने जान बूझकर इस प्रश्न का उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जाएगा।

"विश्वकर्मा की बनाई हुई चान्दी में कोई महिमा न थी। सब महिमाएँ विश्वास करनेवालों के मन में होती हैं। यह विश्वास करके ही कि उस तलवार में कुछ महिमा है, सुकेतु युद्ध के लिए निकला था। उस प्रकार का विश्वास पड़ोस के राजाओं में भी था। इसलिये बिना युद्ध के, सुकेतु के सामने उन्होंने घुटने टेक दिये। ज्यों ज्यों विश्वास करनेवालों की संख्या बढ़ती गईं, त्यों त्यों तलवार की महिमा भी बढ़ती गई। चीजों को बनाने की अपेक्षा महिमा बनाना आसान है। यह बात बिना जाने विश्वकर्मा झूठ बोलकर पेट भरा करता था। जब सिर पर मौत आई तब उसे यह भेद पता लगा। यही पारस पत्थर उसने बुढ़ापे में पैदा किया।"

इस प्रकार राजा का मौन भङ्ग होते ही, बेताल शव के साथ, फिर जाकर पेड़ पर बैठ गया।

(कल्पित)



विदूषक का जवाब

एक राजा के यहाँ एक विदूषक था। वह राजा का दिल बहलाकर बहुत से इनाम पा चुका था। राजा उसे बहुत पसन्द करते थे।

एक दिन, जाने क्यों राजा को विदूषक पर बहुत गुस्सा आया। राजा ने गुस्से में आज्ञा दी कि उसका सिर काट दिया जाय।

विदूषक ने राजा के चरणों पर पड़कर क्षमा माँगी।

"जो अपराध तूने किया है, उसके लिए मरण-दण्ड जरूरी है। परन्तु चूँकि तूने मेरा बहुत दिन से मनबहलाव किया है, इसलिये तुझे एक रियायत देता हूँ। वह यह कि तू जिस तरह मरना चाहता है, वह मुझे कल तक आकर बता दे।" राजा ने कहा।

अगले दिन विदूषक ने राजा के पास जाकर कहा-"मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं किस तरह मरना चाहता हूँ। मुझे कृपया उस तरह मरने दीजिये।"

"हाँ हाँ ! मैं उसके लिए तैयार हूँ। बताओ, कैसे मरना चाहते हो?" राजा ने पूछा।

"राजन्! मैं बुढ़ापे में चारपाई पर पड़े मरना चाहता हूँ।" विदूषक ने कहा।

राजा भी क्या करता? उसने विदूषक को छोड़ दिया।



नाविक सिन्दबाद

कई दिनों तक मेरा जीवन आराम से कटता रहा। मैं और मेरी पत्नी बड़े प्रेम से रहा करते। इसलिये मैंने बग़दाद, जब चुपचाप जाने की ठानी तो पत्नी को भी साथ ले जाने की सोची। आदमी कुछ सोचता है, और भगवान कुछ और--यह बात कभी झूठ नहीं निकलती। यह बात कि मैं दिन के सपने देख रहा था, जल्दी ही स्पष्ट हो गई।

एक दिन पड़ोस के घर में, एक की स्त्री गुज़र गई। मैं उससे मिलने गया। मैने कहा-"दुख मत कीजिये। दुःख से हम कुछ नहीं कर सकते। यह वियोग आप जल्दी ही भूल जायेंगे। कौन जाने कि आपको इससे भी अच्छी पत्नी मिले।"

यह बात सुनकर उसे कुछ अचरज हुआ। "थोड़ी देर में मरनेवाले के लिये दूसरी पत्नी की क्या जरूरत?" उसने कहा।

इस बार आधर्य करने की मेरी बारी थी। "आप क्यों ऐसा कह रहे हैं? क्यों फालतू निराश

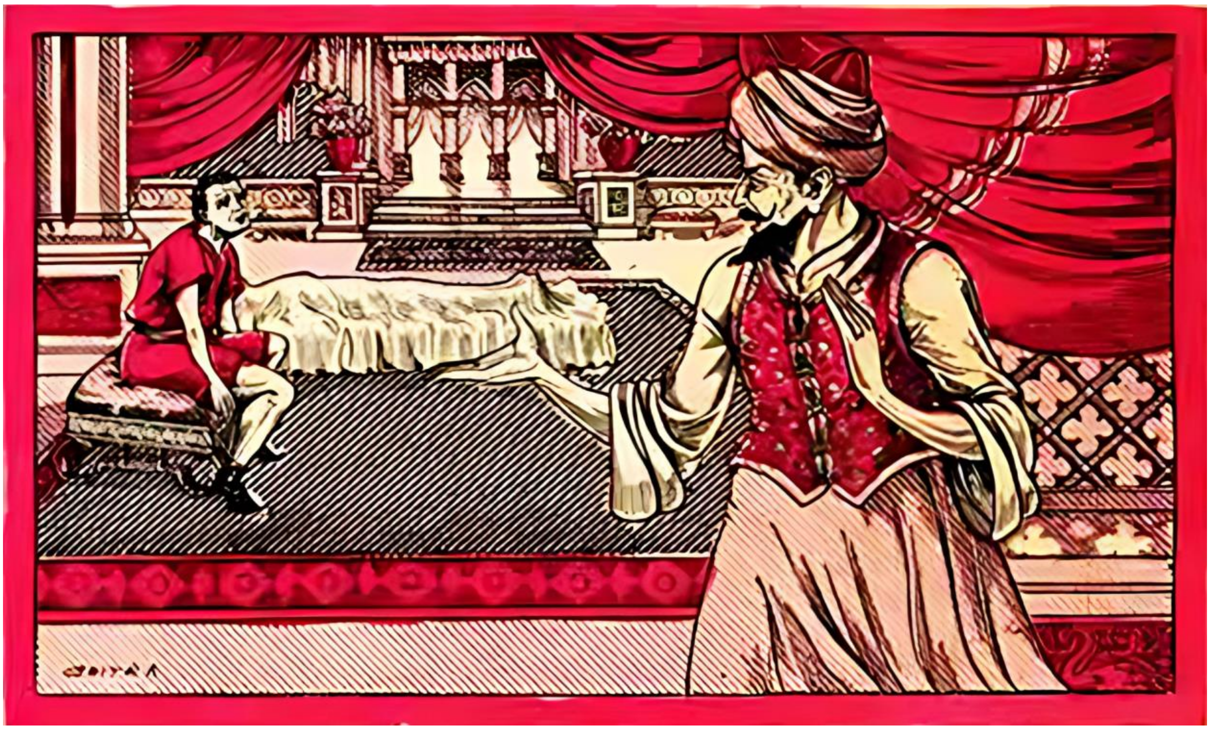
होते हैं? अल्लाह की मेहरबानी से आपकी सेहत में कोई ख़रावी नहीं है। कहीं आप आत्महत्या करने की तो नहीं सोच रहे हैं?"

आप शायद हमारे देश के रीति-रिवाज़ नहीं जानते हैं। हमारे देश में चाहे पति मरे या पत्नी, शव के साथ दोनों को ही दफ़ना देते हैं। इस रीति का सबको पालन करना होता है। राजा को भी।"

"छी छी! यह क्या रीति है? जब तक मुझ में प्राण है, में इस रीति का कभी पालन न करूँगा।" मैंने कहा।

हम बातें कर ही रहे थे कि उसके सम्बन्धी आये। उसकी पत्नी के मरने पर, और उसको मरने की तैय्यारी करते देख, वे रोने-धोने लगे। फिर अन्त्येष्टि की विधि पूरी की जाने लगी। शव को क़ीमती कपड़े पहना कर, गहनों से सुशोभित कर वे श्मशान की ओर चले। शव के पीछे पति चल रहा था। उसके बाद उसके सम्बन्धी चल रहे थे।

सब नदी किनारे के एक पहाड़ पर गये। वहाँ पर एक गहरा कुआँ-सा था। उस पर एक बड़ा पत्थर ढका हुआ था। उसको एक तरफ हटाकर शव को उसमें उतारा।





जाना मैंने कहीं नहीं देखा है। इस रीति का पालन क्या परदेशियों को भी करना पड़ता है? कृपा करके यह बताइये।"

"ज़रूर पालन करना पड़ता है। अगर पत्नी मर गई, तो यहाँ रहनेवाले परदेशियों को भी उसके साथ मरना होगा।" राजा ने कहा।

मुझे ऐसा लगा जैसे कोई मेरे पेट में हाथ डालकर, मथ रहा हो। दिल की धड़कन तेज़ हो गई। मैं घबराता घबराता घर गया। कहीं ऐसा न हो कि मेरी अनुपस्थिति में मेरी पत्नी मर गई हो। उसको सुरक्षित देख मुझे कुछ ढाढ़स हुआ। "डरो मत सिन्दबाद! तुम ही पहले मरोगे! जीते जी तुम्हें नहीं दफना देंगे।" मैंने अपने आपको आश्वासन दिया। परन्तु यह आश्वासन झूठा साबित हुआ। क्योंकि इसके कुछ दिनों बाद मेरी पत्नी को बीमारी हुई। वह थोड़े दिन चारपाई पर पड़ी रही। फिर मर गई।

मेरे दुख और भय की सीमा न थी। जीते जी दबाये जाने से क्या या

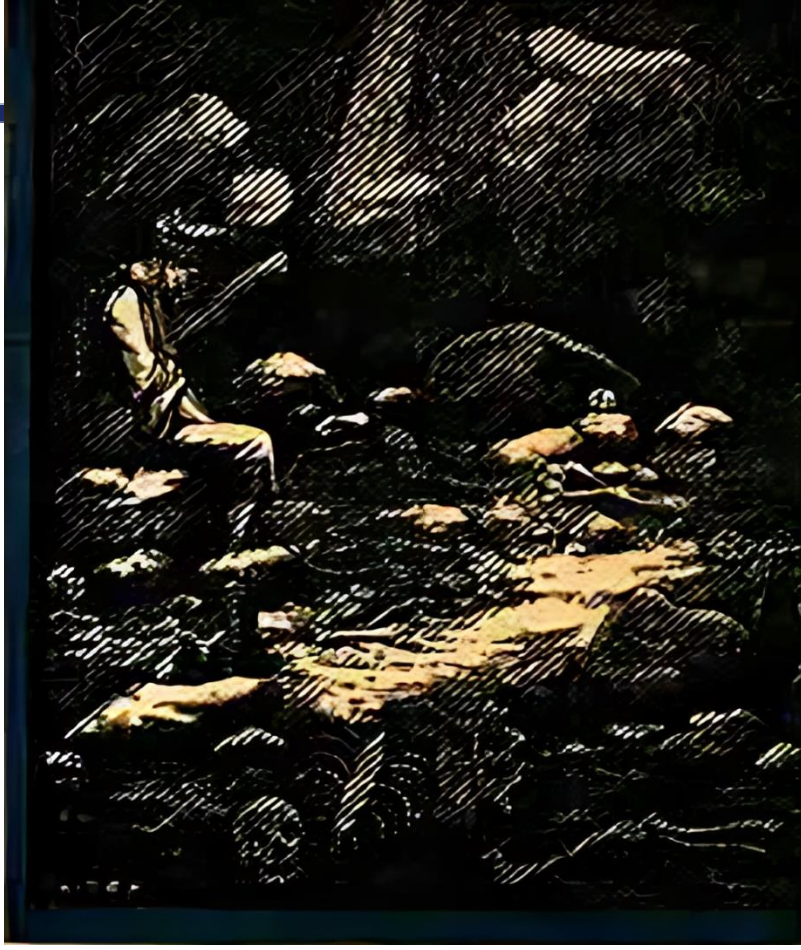
उसके बाद मेरे मित्र को रस्सियों से बाँधकर उसमें उतारा गया। उस रस्सी में एक सुराही पानी की और सात रोटियाँ बाँधी गई। मेरे मित्र ने नीचे उतरने के लिए कुछ भी आनाकानी नहीं की। फिर कुएँ पर पत्थर ढ़ाँप दिया गया। हम सब वापिस चले आये।

मैंने भी इस भयङ्कर विधि में भाग लिया था। मुझे बड़ा दुख हो रहा था। इतनी भयङ्कर रीति मैंने कहीं और न देखी थी। राजमहल में जाकर मैंने राजा को देखते ही कहा-"हुजूर! मैंने बहुत से देश देखे हैं, परन्तु मृत पत्नी के साथ जीवित पति का दफ़नाया

नरभक्षकों के हाथ खाये जाने से क्या? जब राजा ने आकर मेरी मृत्यु के बारे में शोक व्यक्त किया, तो मेरी रही सही आशा भी जाती रही। राजा को मुझसे बड़ा लगाव था। उन्होंने कहा कि जब मुझे समाधि में रखा जायेगा, तब वे दरबारियों सहित उपस्थित होंगे। सर्वाभूषणों से सुशोभित कर, जब मेरी पत्नी को बक्स में रख कर ले जाया जाने लगा, तो में उसके पीछे चला, और मेरे पीछे राजा चल रहे थे।

नदी के किनारे वाले पहाड़ पर गये। कुएँ पर रखा पत्थर अलग रखा गया। मेरी पत्नी के शव को नीचे उतारा गया। वे सब जो मुझसे विदा लेने आये थे, मेरे चारों और परिक्रमा करने लगे। तब मैंने राजा से कहा- "मुझे इस देश की रीति का शिकार बनाना उचित नहीं है। मेरे देश में मेरी पत्नी है, बाल बच्चे हैं। वे मेरी इन्तज़ार कर रहे होंगे।"

मेरी बात किसी ने न सुनी। मेरे हाथों में रस्सी बाँध दी गई। उसी रस्सी में पानी की सुराई, और सात रोटियाँ बाँध दी गई। मुझे नीचे उतारा गया।



"रस्सियों को छोड़ दो। हम ऊपर खींच लेंगे" वे ऊपर से चिल्लाये। मैंने रस्सी नहीं छोड़ी, बल्कि इशारा किया कि वे मुझे ऊपर खींच लें। उन्होंने ऊब कर रस्सी छोड़ दी और कुएँ पर पत्थर रखकर वे चले गये।

अन्दर एक बड़ी गुफा-सी थी। शवों के कारण सब जगह बदबू आ रही थी। क्योंकि ऊपर से थोड़ी बहुत रोशनी आ रही थी, इसलिये वहाँ घना अन्धकार न था। मैं ज़मीन पर गिर गया। बहुत देर तक दुखी पड़ा रहा। "आराम से घर में रह रहा था। छोड़कर आया हूँ। इसलिये मेरी स्थिति यह ही होनी चाहिये। जब

वह जहाज डूबा था, समुद्र में ही क्यों न डूब मरा? कम से कम नरभक्षकों का भोजन जो बन गया होता? मैं इस मनहूस देश में क्यों आया? इस तरह की बुरी मौत क्यों मरी जाये?" मैं सोचता रहा।

थोड़ी देर बाद भूख सताने लगी। में ज़िन्दा रहने की कोशिश में था, इसलिए थोड़ी थोड़ी रोटी और पानी पीने लगा। रात में सोने के लिए एक छोटी-सी जगह साफ़ कर ली। धीमे धीमे मेरी रोटी, और पानी ख़तम होने लगे। अब सिवाय मृत्यु की प्रतीक्षा के मैं और कुछ न कर सकता था। उस हालत में मुझे कुछ आहट सुनाई पड़ी। मेरी नींद टूट गई। सावधानी से खुना तो किसी के साँस लेने की आवाज़ आ रही थी। बाद में किसी जानवर के भागने की ध्वनि सुनाई पड़ी। में हिम्मत करके उस भागते हुए जानवर के पीछे भागा। बहुत दूर, ऊपर नीचे भागता भागता गया तो सामने एक ही एक तारा चमचमाता दिखाई दिया।

मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। वह गुफा में एक और कुआँ हो सकता है, उसमें से भी शव फेंके जाते होंगे-- मैंने



सोचा। पास जाकर देखा तो वह एक खोह की तरह थी। शवों को खाने के लिए भेड़िये बगैरह उस जगह का उपयोग करते होंगे। उसमें घुस कर जब में ऊपर आया तो आकाश में तारे चमक रहे थे। निर्मल वायु चल रही थी। मेरे सामने समुद्र था और पीछे पहाड़।

वहाँ घुटने टेक कर मैने भगवान को अपनी कृतज्ञता प्रकट की। वहाँ मुझे कोई भय न था। नगरवाले उस तरफ न आते थे। मैं फिर उसी रास्ते गया और शवों को पहनाये गये सब गहने जमाकर लाया। और समुद्र के किनारे, पहाड़ की तलहटी में उनको होशियारी से मैंने रखा। मैंने बहुत सा चान्दी-सोना इस तरह जमा कर लिया।

जो कुछ मिलता खाता, वहाँ समुद्र के किनारे पड़ा रहता। एक दिन मुझे एक नाव दिखाई दी। मैंने अपनी पगड़ी उतारी और उसको हवा में फहराने लगा। सौभाग्य से नाववालों ने मुझे देख लिया। नाव को किनारे पर लाये। मुझे और मेरी गट्ठरों को नाव पर चढ़ा लिया। नाव के कप्तान ने मेरे पास आकर कहा -"क्यों



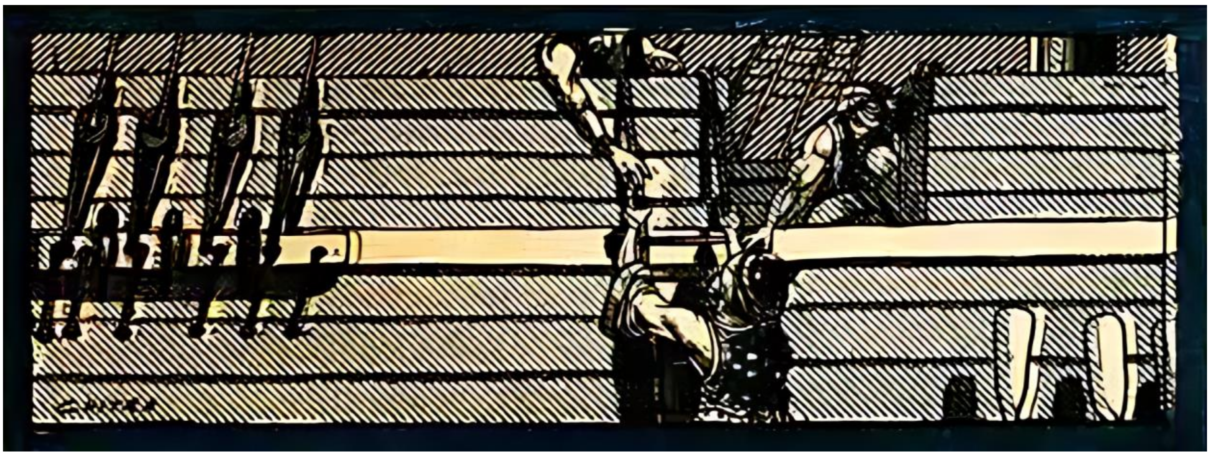
भाई! मैं कितने ही दिनों से इस इलाके में नाव चलाता आया हूँ।पर यहाँ कभी कोई आदमी नहीं दिखाई दिया। तुम यहाँ कैसे आये?"

"क्या करूँ हुजूर? हम एक बड़ी नाव में सफ़र कर रहे थे कि तूफ़ान आया और नाव के टुकड़े टुकड़े हो गये। मैं ही एक ज़िन्दा रहा। मुझे एक बड़ा तख़्ता मिला। उसी पर अपना माल लादकर यहाँ आ पड़ा।" मैंने कहा। अगर मैं यह कहता कि मेरी शादी हो गई है और मेरी पत्नी के मर जाने पर मुझे भी दफना दिया गया था, तो शायद उस नाव पर उस देश का कोई आदमी होता, और सुन लेता तो आफत आ जाती। इसलिए मैंने झूठ कह दिया।

कप्तान से दोस्ती करने के लिए, मैने एक सुन्दर गहने को गठ्ठर में से निकाल कर उसे देना चाहा । परन्तु उसने लेने से इनकार कर दिया। और कहा-"यात्रियों से हम पैसा लेते हैं। पर जिस की जान बचाते हैं, उनसे पैसे नहीं लेते। कितनों ही को मैंने स्वयं भोजन कपड़े, राहखर्च दिया है। दूसरों के प्रति मनुष्य की तरह व्यवहार करना मानवता का धर्म है।"

उसकी ईमानदारी देखकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। सफ़र बड़े आराम से कटा। मैं घण्टों फुरसत से पड़ा रहता और अपने अनुभवों को याद करता। सब कष्ट मुझे सपनों की तरह लगते। पर जब मुझे उस गुफा की याद आती तो रोङ्गटे खड़े हो जाते।

जैसे तैसे हमारी नाव बसरा पहुँची। वहाँ कुछ दिन ठहरकर, बग़दाद पहुँचा। मुझे और मेरे लाये हुए माल को देखकर बन्धु-मित्र बहुत खुश हुए और उन्होंने मेरे सम्मान में कई दावतें दीं।





[५]

[जब मोहन भुवन सुन्दरी को उठा ले गया तो ग्रीकों ने ट्रोय पर चढ़ाई की। पहले दिन के युद्ध में ट्रोजनों को हार खानी पड़ी। उसके बाद ग्रीक ट्रोय नगर पर कब्जा करके आसपास के प्रदेशों को लूटने लगे। दोनों पक्षों में यह लूट-खसोट नौ वर्ष तक चलती रही। इन नौ वर्षों में युद्ध के बजाय ग्रीक के शिविरों में कई घटनायें हुयीं।]

ग्रीक लोगों के ट्रोय नगर को घेरे नौ वर्ष पूरे हो रहे थे । सरदियाँ आ गई। सरदियों में युद्ध नहीं होता था। इसलिये उन दिनों ग्रीक अपनी छावनी बढ़ाते, और बाण विद्या का अभ्यास किया करते। युद्ध हो या न हो, यद्ध की तैयारियाँ हमेशा होती रहतीं।

युद्धभूमि से कुछ दूर सूर्य भगवान का एक मन्दिर था। वह तटस्थ प्रदेश था। उस मन्दिर में बलि देने के लिये ग्रीक और ट्रोजन दोनों जाया करते। ट्रोय नगर के प्रमुख पुरुष कभी कभी ग्रीक लोगों को उसी मन्दिर में दिखाई दिया करते थे। ट्रोय नगर वासी भी ग्रीक नेताओं को कभी कभी वहाँ देखा करते थे।

एक दिन वज्रकाय उस मन्दिर में बलि देने के लिये आया। वहाँ उसको वर्धन की पत्नी और लड़की दिखाई दी।



वे भी बलि देने आये थे। वर्धन की लड़की प्रमोदिनी बड़ी सुन्दर थी। उसको देखते ही वज्रकाय उससे प्रेम करने लगा। उसके लिए उसको देखे बग़ैर रहना मुश्किल हो गया। छावनी में वापिस जाते ही उसने एक दूत को बीरसिंह के पास भेजा। "वज्रकाय तुम्हारी बहन प्रमोदिनी से विवाह करना चाहता है।" दूत ने वज्रकाय से कहा।

"तुम ग्रीक छावनी को छोड़कर अगर मेरे पिता वर्धन से आ मिले तो तुम मेरी बहन से विवाह कर सकते हो। अगर तुम यह न कर सके, तो कम से कम यह वचन दो कि भूधव आदि वीरों की हत्या करवा दोगे।" वीर सिंह ने वज्रकाय के पास कहलाकर भेजा। ये उसकी शर्तें थीं।

वज्रकाय ने इन शर्तों के मानने में आनाकानी की। वह ग्रीक सेना का प्रमुख नेता जो था।

इस बीच सरदियाँ ख़तम हो गई और वसन्त शुरू हो गया। युद्ध भी फिर शुरू हुआ। मैदान में वीर सिंह से मुकाबला करने के लिए वज्रकाय ने बहुत प्रयत्न किया। पर उसके प्रयत्न सफल न हुए। वह वीर सिंह के पास जा ही रहा था कि उसके भाई ने बाण मारकर उसका हाथ यकायक घायल कर दिया।

युद्ध के रुख से ऐसा लगता था, जैसे देवता उनके प्रतिकूल हो।

वज्रकाय ने जब ट्रॉय नगर के आसपास के राजाओं को जीता था, उन दिनो की प्रथा के अनुसार तब कई स्त्रियाँ उसकी गुलाम हो गई थीं। इनमें हेमा नाम की, भामिनी नाम की दो लड़कियाँ भी थीं। ग्रीक वीर जब इन गुलामों को आपस में

बाँटने लगे तो हेमा, राजा के हिस्से में आई, और भामिनी वज्रकाय के हिस्से में।

इनमें हेमा के पिता का नाम हेमाम्बर था। वह सूर्योपासक था। भक्त था। अपनी लड़की को ग्रीक के हाथों से छुड़ाने के लिए, उसने राजा के पास बहुत-से उपहार भेजकर, हेमा को छोड़ने की सविनय प्रार्थना की।

परन्तु राजा ने न उसके उपहार स्वीकार किये, न उसकी प्रार्थना ही मानी। हेमाम्बर को डाँट-डपटकर उसने भेज दिया। इस घटना के बाद, ग्रीक शिविर पर कहीं से बाण गिरते, और सैकड़ों सैनिक रोज़ मारे जाते। ग्रीक सैनिकों में हाहाकार मच गया।

इस तरह दस दिन तक बाण गिरते रहे। तब ग्रीक नौकाओं के मार्ग-दर्शक काँशक ने कहा-

"हेमाम्बर सूर्योपासक था। वह सूर्य का प्यारा था। वह अपनी लड़की को छुड़वाने के लिए आया, और राजा ने डॉट डपटकर उसे भेज दिया। हेमाम्बर ने सूर्य भगवान से प्रार्थना



की और सूर्य भगवान ही हम पर इस प्रकार बाण छोड़कर हमें सजा दे रहे हैं। अगर हम इस ख़तरे से बचना चाहते हैं तो हमें तुरन्त हेमा को छोड़ देना चाहिये। और कोई रास्ता नहीं है।" काँशक ने कहा।

राजा को इस बात पर विश्वास हो गया। हेमा को तुरन्त उसने हेमाम्बर के पास भेज दिया। वज्रकाय के हिस्से की भामिनी को उसने फौरन अपने यहाँ बुलवा भेजा।

यह देख बज्रकाय को बहुत गुस्सा आया। "अब से मेरा इस युद्ध से कोई



दिल टुकड़े टुकड़े हो गया। वह बुरी तरह घबरा गया। सन्धि के लिए उसने ट्रोजनों के पास ख़बर भिजवाई।

युद्ध रोक दिया गया। क्योंकि युद्ध भुवन सुन्दरी के लिए हो रहा था, इसलिये निश्चय किया गया कि उसके पति प्रताप, और उसको उठा ले जानेवाले मोहन में परस्पर द्वन्द्व युद्ध हो। यह निश्चय ट्रोजनों को पसन्द था और ग्रीक लोगों को भी।

वास्ता नहीं है। मैं अब इस युद्ध में भाग न लूँगा।" उसने निश्चय किया। वह पहले ही प्रमोदिनी से प्रेम करने लगा था। उसके पिता वर्धन को सन्तुष्ट करने के लिए वज्रकाय को यह अच्छा मौका मिला। वज्रकाय के साथ उसकी सेनायें भी मैदान छोड़कर जाने लगीं। ग्रीक सेना में खलबली मच गई।

जब ट्रोजनों को मालूम हुआ कि वज्रकाय ने ग्रीक लोगों की तरफ से युद्ध न करने की शपथ ली है, तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने बड़े जोर-शोर से ग्रीक लोगों पर हमला किया। उनका हमला देखकर राजा का

प्रताप और मोहन में द्वन्द्व युद्ध हुआ। परन्तु वह पूरा नहीं हुआ। बीच में ही मोहन कहीं गायब हो गया। यह सुना गया कि कामिनी देवता, उसको अपने प्रभाव से अदृश्य कर ट्रोय नगर ले गई थी। क्योंकि द्वन्द्व युद्ध समाप्त न हुआ था, इसलिये सन्धि में भी बाधा पड़ी। कण्टक नाम के ट्रोजन वीर ने प्रताप पर बाण छोड़ा। यह देख देवमय आग बबूला हो गया। उसने कण्टक को तो मार ही दिया। और प्रशंसन को भी घायल कर दिया।

इसके बाद, वीरसिंह ने वज्रकाय को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा। परन्तु वज्रकाय ने उत्तर दिया कि वह युद्ध छोड़ चुका था।



वीरसिंह के साथ द्वन्द्व युद्ध करने के लिए ग्रीकों ने भूधव को चुना क्योंकि ग्रीक वीरों में वज्रकाय के बाद, भूधव ही सबसे अधिक चलवान समझा जाता था।

वीरसिंह और भूधव का सूर्यास्त तक युद्ध होता रहा। पर उनमें न कोई जीता, न हारा। वे दोनों बराबर थे। सूर्यास्त के बाद, उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया, और एक दूसरे की प्रशंसा कर, आपस में उपहार पुरस्कार भी दिये।

दोनों पक्ष तात्कालिक रूप से युद्ध समाप्त करने के लिए मान गये। श्रीकों ने युद्ध में हत व्यक्तियों को वहीं गाड़ दिया, और उस पर एक बड़ी दीवार खड़ी कर दी। उस दीवार के सामने एक गहरी खाई खोदी गई और उसके बाद पेड़ों की पंक्ति लगाई गई।

इसके बाद, युद्ध फिर शुरू हुआ। उस युद्ध में ग्रीकों की पराजय हुई। ट्रोजनों ने उनको खाई के पार दीवार के परली तरफ़ धकेल दिया। उस दिन रात को ट्रोजनों ने ग्रीक नौकाओं के कुछ दूरी पर ही डेरा डाला।

ग्रीस के मुख्य सेनापति, राजा हताश हो गया। जैसे भी हो वज्रकाय को फिर युद्ध में उतारना होगा। नहीं तो वह जानता था कि फिर ज़रूर हार होगी। रत्नवर्ण, भूधव, रूपधर और दो आदमी मिलकर वज्रकाय से मिलने गये। उनके द्वारा राजा ने वज्रकाय के पास कई उपहार भेजे। उसके पास यह भी ख़बर भिजवाई कि तुम अपनी भामिनी को ले जाओ। युद्ध में आकर शामिल हो।" उसको मनाने की बहुत कोशिश की गई।

राजा का भामिनी को, वज्रकाय को देने का एक और कारण भी था। हेमा,



जो उसके पिता के पास भेज दी गई थी, यह कहकर कि मुझे वहाँ अच्छा नहीं लगता, राजा के पास फिर वापिस आ गई थी। राजा के यहाँ बड़े आराम से रहती थी।

वज्रकाय ने राजा के दूतों से बड़े प्रेम से बातचीत की, पर वह अपना निश्चय बदलने के लिए राज़ी न हुआ। "कल सवेरे ही मैं अपनी नावों को लेकर अपने देश वापिस चला जाऊँगा।" उसने दूतों से राजा के पास साफ़ साफ़ कहला भेजा। दूत निराश हो गये।

उस दिन रात ही, रूपधर और देवमय ने ट्रोजनों पर हमला करने की ठानी। वे हमला करने जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें ट्रोजनों का भेजा हुआ गुप्तचर दिखाई दिया। दोनों वीरों ने उस पर हमला किया और मार-पीटकर उससे शत्रु के भेद मालूम कर लिये। उसे मार भी दिया।

उसने एक मुख्य भेद बता दिया। वह यह था:



"विच्छेद नाम का लेस देश का राजा, अपनी सेना और मलाई जैसे सफेद घोड़ों को लेकर, ट्रोजनों की छावनी में डेरा डाले हुए था। वे घोड़े हवा से भी तेज़ दौड़ सकते थे। यह प्रसिद्ध बात थी कि अगर वे घोड़े ट्रोय नगर में चरें, और ट्रोय नगर के दक्षिण में बहनेवाली स्कामन्दर नदी में पानी पियें, तो ट्रोय को कोई नहीं जीत सकता था। विच्छेद के घोड़ों ने अभी ये दोनों काम न किये थे।" ग्रीक वीरों को भेदिये से मालूम हो गया था कि विच्छेद ट्रोजन की छावनी के दाहिनी ओर के तम्बुओं में कई सैनिकों के साथ पड़ाव किये हुए था।

रूपधर और देवमय, भेदिये को मार कर, सीधे विच्छेद के डेरे पर गये। सोते हुए विच्छेद और उसके बारह नौकरों को उन्होंने मार दिया और उसके सफ़ेद घोड़ों को खोलकर वे अपने शिविर में रातों रात ले गये।

थोड़ी देर बाद, विच्छेद के नौकर, यह जानकर कि राजा की और उसके नौकरों की हत्या कर दी गई है, जिस रास्ते से आये थे, उस रास्ते वापिस चले गये। ग्रीकों ने उनका रास्ता रोका, और उनका काम तमाम कर दिया।

इतना होने के बावजूद, अगले दिन युद्ध भूमि में फिर ग्रीक लोगों की हार हुई। उससे पहले उनकी इतनी बुरी तरह हार कभी न हुई थी। युद्ध में राजा, देवमय, रूपधर, आदि, सभी वीर ज़ख़्मी हुए।

सिंह सरीखे, ट्रोजन वीरसिंह ने ग्रीकों को खदेड़ दिया। उनकी बनाई हुई दीवार को गिरा दिया। यही नहीं, वह आगे जाकर ग्रीक सैनिक पंक्ति में भी घुस गया। ग्रीक वीरों ने लाख कोशिश की, पर वे वीरसिंह को पीछे न हटा सके। वह बहादुरी से आगे बढ़ता गया।

भूघव का फेंका हुआ एक पत्थर वीरसिंह को लगा, वह एक क्षण छटपटाया, पर फिर संभलकर उठ गया। इस तरह उसने अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाया।

देखते देखते ट्रोजन ग्रीक नौकाओं के पास पहुँच गये। एक नाव को आग भी लगा दी। वह नाव चन्द्रप्रभु की थी। ग्रीक नौकाओं के ट्रोय नगर के तट पर आते ही भूमि पर उतरने वाला, और सबसे पहले मारा जानेवाला ग्रीक वीर चन्द्रप्रभु ही था।

[अभी और है]





दो ठग

एक देश में दो ठग रहा करते थे। दोनों साधुओं का वेश घर कर, गाँव गाँव फिरते, और लोगों से कहा करते कि हम भूत वैद्य कर सकते हैं। तावीज़ दे सकते हैं। इस तरह लोगों को धोखा देकर वे पैसा कमाते। इससे पहले कि उनका धोखा किसी को मालूम होता, वे एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव चले जाते। बड़ा अपने को गुरु कहता, और छोटा शिष्य। इस तरह लोगों को धोखा देने से जो कुछ पैसा मिलता, उसे वे एकान्त में बैठकर आपस में आधा आधा बाँट लेते।

क्योंकि लोगों को धोखा देते थे, इसलिये वे हमेशा घूमते फिरते रहते। इस महीने में अगर किसी जगह थे तो दूसरे महीने किसी और जगह होते। फिर भी उनकी बदनामी उनके पीछे पीछे ही चलती थी।

जब गुरु-शिष्य एक गाँव में पहुँचे तो वहाँ एक ऐसा आदमी भी था जो उनका धोखा जानता था। उस आदमी ने उनको रोककर कहा- "तुम चोर हो, धोखे- बाज़ हो।" उसने शोर मचाया। तुरन्त दस आदमी जमा हो गये। उन दोनों को खूब पीटकर गाँव से बाहर भगा दिया। इस तरह का यह पहला ही अनुभव था।

इस घटना के बाद, गुरु शिष्य, अलग अलग अपने रास्ते पर चलने लगे। गुरु बहुत दिन सफ़र करने के बाद एक बड़े शहर में पहुँचा। वहाँ एक धर्मशाला बराड़े में, आँखें मींचकर उसने ध्यान किया।

इस बीच में, वहाँ बहुत बेकार आदमी जमा हो गये। थोड़ी देर बाद, आँखें खोलकर, सबको देखकर वह मुस्कराया।

श्री ए. आर. चौधरी

“स्वामी! आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं? आपके पास क्या शक्ति है?" दर्शकों ने पूछा।

"कोई ऐसी चीज़ नहीं, जो हम नहीं कर सकते हो! मन्त्र पढ़कर विभूति दी, तो सब रोग काफूर हो जाते हैं। ताबीज़ बाँधे तो कोई आपत्ति पास नहीं फटकती। सब प्रकार की बीमारियों को ठीक करते हैं।" दाढ़ी सहलाते हुए साधु ने कहा।

दर्शकों में से कई ने विभूति ली। कई ने तावीज़ भी लिये। यह कहकर कि हरिद्वार में मठ बनवाना है, स्वामी ने उनमें से कई से रुपये भी लिये।

जब उसने पैसे माँगे, तो वे लोग जो ताबीज़ लेना चाहते थे, उन्होंने न लेना चाहा।

ठीक उसी समय शिष्य वहाँ आया। उसने गुरु को देखा। उसने तुरन्त गुस्से में कहा-"अरे! यहाँ भी आ मरे, कपटी सन्यासी कहीं का!" फिर उसने वहाँ जमा हुए लोगों से कहा- "आप इसका विश्वास न कीजिये। एकदम धोखेबाज़ है। कल परसों तक मैं इसका शिष्य



था। इसके धोखे में भी साझेदार था। अब मुझे अक्ल आ गई है। आप इसकी बातों में न आइये।"

यह सुन, कई ने नाक पर अँगुली धर ली। "अच्छा हुआ! कितना धोखेबाज़ है! कितना बड़ा धोखा है।"

पर जिन्होंने तब तक गुरु से ताबीज़ ले ली थी, उन्होंने उसकी ओर मुड़कर कहा-"कोई दुष्ट आकर आपका इस प्रकार अपमान कर रहा है और आप यों चुपचाप बैठे हैं? इज़ाज़त हो तो हम उसको घुनकर रख दें।"

गुरु ने दाढ़ी ठीक करते हुए कहा- "अनाड़ी है; उसे अपने पाप का फल मिलेगा। आप उसपर हाथ न उठाइए।"

यह सुन शिष्य और बिगड़ गया। उसने गुरु की ओर मुड़कर कहा- "यह न कहोगे तो और क्या कहोगे? मैं अब तेरा भेद जानता हूँ। अगर किसी ने मुझे छुआ भी तो मैं तेरा भेद खोल दूँगा।"

लोगों को यह विश्वास होने लगा कि गुरु सचमुच धोखेबाज़ होगा। परन्तु इतने में ही गुरु ने खड़े होकर कहा-"अरे भाई! तुम बढ़ चढ़कर बातें कर रहे हो!



तुम समझ रहे हो कि ये नादान लोग तुम्हारा विश्वास करेंगे! सब देखते ही हैं भगवान। मूर्ख! अगर मैं चोर या ठग हूँ तो यह छत मुझ पर गिर जाये। और अगर तेरी बातें झूठी हैं तो कर तू अनुभव !" कहते हुए उसने कमण्डल में से थोड़ा पानी लेकर शिष्य पर छिड़का।

दूसरे क्षण शिष्य ठूँठ की तरह गिर पड़ा। छटपटाने लगा और शव की तरह काठ-सा हो गया।

"मर गया! मर गया!" सब चिल्लाने लगे। "शक्तिशाली स्वामी की निन्दा करना कोई मामूली बात है। मामूली स्वामी जानकर जो कुछ मुँह में आया बक दिया! किये का फल मिल गया।" कई ने कहा। "स्वामी! उसने अनजाने गल्ती की है। उसे माफ़ कीजिये।" कुछ ने गुरु से कहा।

गुरु ने झोले में से एक तावीज़ लेकर शिष्य के हाथ में बाँधकर कहा-"मैने तुझे क्षमा कर दिया है। उठ।"

शिष्य तब ऐसा उठा, जैसे सोकर जग रहा हो। चारों तरफ गड़बड़ी देख गुरु के पैरों पर पड़कर, रोते हुए उसने कहा-"स्वामी! क्षमा कीजिये।"

"क्षमा कर दिया। जाओ। फिर कभी स्वामियों को न छेड़ना।" गुरु ने कहा। शिष्य आँखें मलता हुआ कहीं चला गया। फिर लोगों ने तावीजें खरीद कर बहुत-सा रुपया गुरु को दिया।

तब गुरु उस नगर को छोड़कर चला गया। थोड़ी दूर पर शिष्य उसको दिखाई दिया। उसने अपने कमाई का आधा हिस्सा उसे दे दिया। फिर दोनों अलग अलग चलते गये, ताकि एक और शहर में यह नाटक फिर खेला जा सके।



CHANDAMAMA (Hindi) MARCH 1957 Regd. No. M. 5452



भुवन - सुन्दरी